श्रीमद् भगवद् गीता

रमेश चन्द्र गुप्ता

श्रीमद् भगवद् गीता

श्लोकशः हिन्दी काव्यानुवाद :

रमेशचन्द्र गुप्ता

अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

कुछ अपनी बातें

इस पुस्तक में गीता के 700 श्लोकों का श्लोकशः अनुवाद किया है। कई पुस्तकों का अवलोकन करने के बाद जो इस तुच्छ बुद्धि को उपयुक्त लगा, वह लिख दिया। फिर भी किसी श्लोक में प्रबुद्ध पाठक यदि कोई सुझाव लिखेंगे तो अगले संस्करण में उनका उपयोग करने का प्रयास करूंगा।

इस पुस्तक के हर श्लोक में मेरी धर्मपत्नी समाई हुई है। वह संस्कृत में एम.ए. है। कौन सा शब्द उनका है, कौन सा मैंने चुना – कहना मुश्किल है। यह पुस्तक हम दोनों का सांझा प्रयास है, इसको इसी रूप में लेना चाहिए।

कुछ हितैषियों एवं मित्रों ने भी समय–समय पर सुझाव दिए जिनमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक परम पूज्य सुदर्शन जी प्रमुख हैं। मेरे पुराने कवि मित्र श्री शिवदत्त सूद (पटियाला) एवं श्री हर्ष (पटियाला) ने भी कई सुझाव दिए, मैं इन सब का हृदय से आभार प्रकट करता हूं।

मैं अपने जीवन में जिऑलोजिस्ट बनना चाहता था, सिविल इंजीनियर बन गया। नौकरी एम.ई.एस. से शुरू की तो रिटायर पंजाब बिजली बोर्ड से हुआ। नौकरी करते हुए लगभग सारा समय सोचता था कि मैं सुपरिंटेंडेंट इंजीनियर से ऊपर नहीं उठ सकूंगा क्योंकि पोस्टें (पद) कम थीं, पर ऐसा कुछ हुआ कि मैं चीफ इंजीनियर बन गया और फिर पब्लिक सर्विस कमीशन का सदस्य भी। इंजीनियर जीवन में ऐसा कई बार लगा कि मेरे साथ गलत हो रहा है पर समय आने पर समझ आया कि जो मेरे साथ हुआ वही मेरे लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त था। सारा जीवन ऐसा लगता था

कि कोई दैवी शक्ति मेरे जीवन का संचालन कर रही है, मुझे गर्त में गिरने से बचा रही है। समय–समय पर न चाहते हुए भी जीवन को ठीक दिशा में ले जा रही है। अब जब से मैं अपने गुरुदेव, सहज मार्ग के वंदनीय श्री चारी जी महाराज, के संसर्ग में आया तो समझ में आया कि वह दैवी शक्ति और कोई नहीं स्वयं मेरे गुरुदेव ही थे।

एक बात मैं अपने बारे में पाठकों को और बता दूं कि मैं शास्त्रों का ज्ञाता नहीं हूं। संस्कृत मुझे आती नहीं है। गीता भी कोई ज्यादा समझ नहीं आई। मैं कवि भी नहीं हूं। केवल कुछ तुकबंदी करता था। फिर भी यह काव्य लिखने का प्रयास किया तो इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मेरे मालिक की ही योजना थी जो मुझसे यह कार्य करवाना चाहते थे। उन्हीं की प्रेरणा से यह कार्य सम्पन्न हुआ। उन्हीं के श्री चरणों में यह काव्य सादर समर्पित है।

— रमेशचन्द्र गुप्ता

कुछ कुछ काली, कुछ कुछ गोरी

मेरी अपनी काया है।

यही जगत् का रूप निराला

मुझे दृष्टि में आया है।

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

: : 1 : :

धृतराष्ट्र ने कहा –

धर्मक्षेत्र इस कुरुक्षेत्र में
मेरे पांडव सुत एकत्रित
क्या कर डाला सब ने मिलकर
हे संजय ! रण में हो अभिरत।

: : 2 : :

संजय बोले –

व्यूहरचित पाण्डव सेना थी
समुचित उस का कर अवलोकन
द्रोण गुरु के सम्मुख आकर
बोले यूं राजा दुर्योधन।

: : 3 : :

गुरुवर ! तेरे अन्तेवासी[1]
द्रौपद ने संजोया अरिदल
व्यूहित वह अतिशय विस्तृत सा
देखो गुरुवर उनका दल बल।

: : 4 : :

अर्जुन और वृकोदर जैसे
धनुष लिये आए सब भारी
द्रुपद, विराट, सात्यकि जैसे
वीर महारथ हैं धनुधारी।

: : 5 : :

धृष्टकेतु, काशीराजा हैं
शेब्य परम बलशाली पुंगव[2]
चेकितान बली, पुरजित औ'
भोज वहां हैं उन में वाडव[3]।

: : 6 : :

श्रेष्ठ युधामन्यु बलशाली
पांचाली के पांचों जाए
वीर–सुभद्रा सुत, उत्तमौजा
सकल महारथ मिलकर आए।

: : 7 : :

हे द्विजोत्तम ! अपने हित में
जो जो नायक लड़ने आए
उन सबका वर्णन करता हूं
जो परिचय सब से हो जाए।

: : 8 : :

आप, पितामह, कर्ण तथा हैं
कृप से रणजेता सेनानी
सोम–तनय, अश्वत्थामा औ'
वीर विकर्ण अनूपम ज्ञानी।

: : 9 : :

अन्य बहुत से योद्धा आए
अपने शस्त्रों से सज–धज कर
रण–कौशल–युत, ये मेरे हित
लड़ने मरने को हैं तत्पर।

: : 10 : :

पूज्य पितामह से संचालित
अपनी सेना देव अपरिमित
भीम रचित उनकी सेना है
जय इस कारण दिखती निश्चित।

:: 11 ::

अपने अपने मोर्चों पर यूं
आप रहें अब सारे सुस्थित
पूज्य पितामह जिस के कारण
चारों दिक् से होवें रक्षित।

:: 12 ::

बलशाली योद्धा गंगज ने
शंख ध्वनि से स्वर गुंजाए
घोष सबल जिस का तब सुनकर
दुर्योधन मन में हर्षाए।

:: 13 ::

शंख, नृसिंहादिक, ढोलक औ'
मुरज तथा बाजे बहु बोले
बहुत भयानक शब्द हुआ था
जब सब ने मिलकर स्वर खोले।

:: 14 ::

श्वेताश्वों युत उत्तम रथ था
जिसमें आए माधव, अर्जुन
आलौकिक से तब दोनों ने
शंख बजाए अपने राजन।

:: 15 ::

देवदत्त द्वारा निद्राजित
पांचजन्य द्वारा पीताम्बर
भीषम–कर्मी मारुत सुत[4] ने
पोंड्र पकड़ कर गुंजाए स्वर।

:: 16 ::

कुंती पुत्रों में अग्रज ने
शंख अनन्त–विजय तब छेड़ा
सूघोष अवर मुनिपुष्पक ले
सहदेव नकुल ने स्वर फेरा।

: : 17 : :

धृष्टद्युम्न, विराट, शिखण्डी
काशी के राजा धनुधारी
अजेय सात्यकि वीरों ने मिल
शंख बजाए सबने भारी।

: : 18 : :

पांचाली के पांचों जाए
द्रुपद तथा सौभद्र सभी ने
उच्च ध्वनि में मिलकर राजन
शंख बजाए अपने अपने।

: : 19 : :

बहुत भयानक उन शब्दों से
गूंजे दोनों धरती औ' नभ
जिन को सुनकर भय से कांपे
सारे ही कौरव योद्धा तब।

: : 20 : :

शस्त्र प्रहार लगा था होने
तैयारी में थे योद्धा सब
पार्थ कपिध्वज रथ में से तब
देखे सारे ही कौरव जब।

: : 21 : :

धनुष उठाया अरु यूं बोले
मेरा रथ ये आगे कर लो
दोनों सेनाओं के सम्मुख
कृष्ण इसे तुम स्थापित कर दो।

: : 22 : :

रण लड़ने के इच्छुक हैं जो
अवलोकन उनका करना है
कौन यहां योद्धा आए हैं
किस किस से मुझको लड़ना है?

:: 23 ::

दुर्बुद्धि दुर्योधन के हित
आए रण में जो राजा गण
यह इच्छा है देखूं उनको
रण लड़ने हित जिन का है मन।

:: 24 ::

संजय बोले –

निद्राजित के यूं कहने पर
केशव ने रथ आगे लाया
दोनों सेनाओं के सम्मुख
उत्तम रथ लाकर ठहराया।

:: 25 ::

गंगज, द्रोण, महीपालों के
सम्मुख अपना रथ कर स्थापित
माधव बोले एकत्रित हैं
सब कौरव तुम देखो समुचित।

:: 26 ::

दोनों दिक् अर्जुन ने देखे
सोदर, सुत, निज पौत्रे प्यारे
गुरुजन, चाचे, मामे, दादे
श्वसुर तथा निज साथी सारे।

:: 27 ::

अपने सब बांधव देखे तो
मन ही मन में अर्जुन डोले
शोकातुर हो करुणायुत हो
माधव से तब ऐसे बोले।

:: 28 ::

अर्जुन बोले –

लड़ने आए सम्बन्धी ये
देखे तो मन घबराता है

शिथिल पड़े जाते अवयव हैं
मुख मेरा सूखा जाता है।

: : 29 : :

मेरी यह सारी काया ही
हे भगवन ! करती है कम्पन
जब से इन को रण में देखा
रोमांचित हो बैठा है मन।

: : 30 : :

काया अब जलती है अतिशय
गांडीव नहीं पकड़ा जाता
देव ! रहूं मैं कैसे सुस्थिर ?
भ्रमित हुआ मन यह अकुलाता।

: : 31 : :

ऐसी कुल हत्या करने से
कोई सुख ना लगता सम्भव
ये सारे उल्टे लक्षण हैं
मन आहत अब मेरा बांधव।

: : 32 : :

विजय नहीं अच्छी लगती यह
भोग नहीं यह वांछित माधव
राज्य हमें क्या है अब करना
करना क्या जीवन सुख वैभव ?

: : 33 : :

अपने जिन लोगों के सुख हित
राज्य विभव लगते हैं प्यारे
धन औ' जीवन की आशा तज
लड़ने आए वे अब सारे।

:: 34 ::

देव यहां हैं सब सम्बन्धी
पितर, पितामह, बेटे, पोते
ससुर, सखा जन, साले, गुरुजन
और यहां हैं नाती, बहुते।

:: 35 ::

ये सारे सम्बन्धी वध कर
त्रैलोकी ना मुझको इच्छित
इस धरती के शासन का फिर/अर्थ
हुआ क्या कुछ भी वांछित?

:: 36 ::

सारे कुरुपुत्रों का वध कर
कोई सुख क्या हम पावेंगे?
इन दुष्टों का वध कर हम सब
पाप कमा नैतल[5] जावेंगे।

:: 37 ::

अपने ये कौरव बांधव जन
अनुचित लगता वध करना अब
क्योंकि अपने बांधव वध कर
कैसे हम पाएंगे सुख सब?

:: 38 ::

माना ये कौरव लोभी हैं
मैला है इनका अंतर्मन
मित्रों से धोखा औ' कुलवध
पाप नहीं समझें ये दुर्जन।

:: 39 ::

कुल–वध रूपी इन दोषों का
ज्ञान हमें है देवेश्वर जब
इन पापों से बचने का फिर
उचित नहीं! हम ध्यान करें अब?

: : 40 : :

नाश अगर कुल हो जाएं तो
धर्म सनातन मिट जाता है
धर्म मिटा तो सारे कुल पर
पापों का फंदा आता है।

: : 41 : :

पापों के अतिशय बढ़ने से
महिलाएं हो जातीं दूषित
इस कारण भावी संतानें
पैदा होतीं वर्ण – संकरित।

: : 42 : :

कुलघाती औ' कुल दोनों को
ये सब नरकों में ले जाते
पिंड तथा तर्पण बिन भगवन
सारे पितर[6] पतित हो जाते।

: : 43 : :

कुलघाती दुर्जन लोगों के
इन संकर दोषों के कारण
जाती कुल दोनों के मिटते
धर्म नियम सब शाश्वत पावन।

: : 44 : :

जिस जिस मानव का भी ऐसे
धर्म सनातन ही मिट जाता
दीर्घ समय तक ऐसा मानव
नैतल में जाकर दुख पाता।

: : 45 : :

दुख है! प्रज्ञाधारी हम ही
दुष्कर्मों को करने में रत!
सत्ता, लिप्सा, सुख पाने हित
कुल वध करने तक हम उद्यत।

: : 46 : :

कौरव शस्त्रों से सज–धज कर
चाहे चाहें भगवन लड़ना
पर अच्छा है शस्त्रों को तज
बिन संग्राम किए ही मरना।

: : 47 : :

संजय बोले –

शोकातुर हो युद्धस्थल में
निद्राजित बोले यूं राजन
बाण, धनुष दोनों फिर तज कर
रथ पीछे अपनाया आसन।

।। इति प्रथम अध्याय ।।

संदर्भ :

1. अन्तेवासी : शिष्य
2. पुंगव : श्रेष्ठ
3. वाडव : ब्राह्मण
4. मारुत सुत : भीम
5. नैतल : नर्क
6. यहां पितर का अर्थ मृत बाप–दादा न होकर जीवित बड़े बूढ़ों से है। पितर पतित होने का अर्थ है – पितरों से सुख छूट जाना।

द्वितीय अध्याय

: : 1 : :

संजय बोले –

भीगी अखियां शोकाकुल मन
व्याकुल थे करुणा में अर्जुन
ये निम्न वचन कुरुनंदन से
राजन बोले तब मधुसूदन।

: : 2 : :

भगवान बोले –

इस भीषण बेला में कैसे
अज्ञानी बन बैठे बांधव ?
अपकारी मग अपयश दे गा
ना देगा यह द्यौ, सुख, वैभव।

: : 3 : :

छोड़ो अब इस कायरता को
ऐसा करना अनुचित अर्जुन
अनुचित तेरी यह दुर्बलता
जाओ जूझो रण में तत्क्षण।

: : 4 : :

अर्जुन बोले –

हे मधुसूदन ! हे अरिसूदन !
रण में जूझूं कैसे अब मैं
वे पूज्य पितामह, द्रोणगुरु
कैसे मारूं भगवन् सब मैं ?

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 5 : :

मैं इन गुरुओं की हत्या से
अच्छा समझूं भिक्षुक बनना
ये वध कर रक्तिम सा होगा
हर भौतिक सुख वैभव अपना।

: : 6 : :

भगवन ना जानूं शुभ क्या है
या जीतूंगा, ना यह निश्चित
रण में आए कौरव बंधु
वध कर जीना लगता अनुचित।

: : 7 : :

शुभ क्या है मैं ना जानूं यह
मेरा चित् है मोहित पावन
शिक्षा दो मैं शरणागत हूं
करुणा से कायर उपहत मन।

: : 8 : :

निष्कंटक वैभवमय नृप या
देवेश्वर बन जाऊं भगवन
इन करण–सुखाते कष्टों को–
हरने का ना दिखता साधन।

: : 9 : :

संजय बोले –

राजेश्वर ! अन्तरयामी से
यूं बोले निद्राजित अर्जुन –
यह रण लड़ना ना सम्भव है
यह कह कर मौन किया धारण।

: : 10 : :

दोनों सेनाओं के सम्मुख
जब व्याकुल थे अर्जुन अनमन

हंसते हंसते उन से बोले
हे राजन ! ऐसे मधुसूदन।

: : 11 : :

कृष्ण बोले –

अनुचित बातों पर दुख करके
बातें करता ज्ञानीजन सी
ज्ञानीजन दुख ना करते हैं
जीना हो मरना हो कुछ भी।

: : 12 : :

ऐसा युग ना कोई आया
अरु ना आगे भी आएगा
आत्मा, मेरा तेरा या इन –
राजाओं का मिट जाएगा।

: : 13 : :

जैसे देही की काया में
बचपन, यौवन या जर आता
धीरजधारी देहान्तर भी
ऐसा समझे ना घबराता।

: : 14 : :

करणन विषयों के मिलने से
सर्दी–गर्मी सुख–दुख बनते
इन द्वन्द्वों को सहना है ये –
क्षण – भंगुर, अस्थायी रहते।

: : 15 : :

सुख–दुख रूपी इन द्वन्द्वों को
जो भी समझें सम नर नारी
वे अव्याकुल धीरजधारी
अमृत पद के हैं अधिकारी।

: : 16 : :

जड़ माया की ना सत्ता है
ना मिट सकता है सत किंचन
तात्विक ज्ञानी पुरुषों द्वारा
समझा ऐसा है विश्लेषण

: : 17 : :

सारे जग में जो व्यापक है
समझो यह अविनाशी सत्ता
इस का नाशक बन सकने की
कोई ना क्षमता है रखता।

: : 18 : :

नित, सीमा बिन औ' अविनाशी
यह आत्मा कहलाता अर्जुन
नश्वर इस की सब काया हैं
फिर उठ लड़! यह कैसा चिन्तन?

: : 19 : :

जो आत्मा को हत्यारा या
इसको मरने वाला कहता
वे दोनों ही अज्ञानी हैं
यह ना मारे, ना यह मरता।

: : 20 : :

यह ना जन्मे, ना यह मरता
यह नित है, ना होता होकर
यह तत्व, पुरातन, शाश्वत है
ना मरता काया मरने पर।

: : 21 : :

अज,[1] अव्यय[2],अविनाशी,अविरत[3]
जिस मानव ने इस को जाना
उस मानव को तुम ने कैसे
घातक या हन्ता है माना?

: : 22 : :

जर्जर हो जाने पर अम्बर[4]
जैसे नर नव करता धारण
वैसे ही तज जरजर काया
अपनाता आत्मा नूतन तन।

: : 23 : :

शस्त्रों द्वारा ना कटता यह
ना यह शुष्मा द्वारा जलता
आशुग ना शोषित कर सकती
ना जल गीला इस को करता।

: : 24 : :

ना जलता, कटता, गीला हो
ना यह आत्मा सूखा करता
चारों दिक् व्यापक, अचला, थिर
नित और सनातन यह रहता।

: : 25 : :

अव्यक्त कहा जाता इस को
सामर्थ्य रहित चिन्तन में मन
यह आत्मा तो अविकारी है
फिर तू क्यों शोकातुर अनमन ?

: : 26 : :

हे भारत ! जो यह तू माने
यह मरता, लेता है जीवन
तो भी बलशाली हे अर्जुन
तू शोकातुर है किस कारण ?

: : 27 : :

जीवन है तो मरना होगा
मरने पर जीवन है निश्चित

जब ये सारी सच्ची बातें
फिर चिन्ता करनी है अनुचित।

: : 28 : :

जीवन से पहले मरने पर
सब प्राणी रहते काया बिन
मध्यांतर में यह देही हैं
फिर क्यों करता यह सब चिन्तन?

: : 29 : :

देखें कुछ इसको विस्मित हो
विस्मित हो कुछ करते वर्णन
विस्मित हो कर कुछ सुनते पर
कुछ सुन कर ना समझें अर्जुन।

: : 30 : :

इस आत्मा का इस काया से
जब वध करना ना सम्भावित
फिर इन सब के हित में तेरा
कोई भी दुख करना अनुचित।

: : 31 : :

जो धर्म अगर अपना सोचो
फिर भी तुम विचलित हो क्योंकर?
इस धर्मी रण को लड़ने से
ज्ञानी को ना कुछ भी बढ़कर।

: : 32 : :

सुरपुर के द्वारों को खोले
आया यह रण तेरे दर पर
सौभाग्यवंत क्षत्री कोई
पाया करता ऐसा अवसर।

: : 33 : :

इस धर्म समर से पीछे हट
तज दोगे जो लड़ना अर्जुन

निज धर्म तथा यश दोनों खो
फिर पाप–मयी होगा जीवन।

: : 34 : :

युग युग तक तेरे अपयश की
जन जन में होगी यूं चर्चा
मानी मानव को इस सब से
मरना ज्यादा लगता अच्छा।

: : 35 : :

जो श्रेष्ठ तुझे अर्जुन कहते
ओछा तुझको वे जानेंगे
तू भय कारण ही भागा है
वे योद्धा–गण यह मानेंगे।

: : 36 : :

तू निर्बल है ऐसा कह कर
तेरे वैरी बतलाएंगे
इससे ज्यादा क्या दुख होगा
जो अपयश वे फैलाएंगे।

: : 37 : :

निश्चय पूर्वक अब इस रण में
जाओ जूझो अब हे अर्जुन !
मरने पर सुरपुर निश्चित है
भू भोगोगे जो जीतो रण।

: : 38 : :

हारो, जीतो, सुख–दुख कुछ हो
या लाभ, अलाभ मिले कुछ भी
सब सम समझो अरु समर करो
फिर पाप बनें ना कर्म कभी।

: : 39 : :

जो कुछ अब तक समझाया है
वह सांख्य कहा जाता अर्जुन

अब योग सुनो जिस पर चलकर
कर्मों के छूटें सब बंधन।

: : 40 : :

आरम्भित कारज ना मिटते
उलटा भी ना दें फल किंचित्
थोड़ा भी कर्मों का करना
भारी भय से करता रक्षित।

: : 41 : :

निश्चय करने वाली बुद्धी
यह एक अनग ! होती निश्चित
भरमाए पुरुषों में ही यह
बहु–रूपों में होती दृग्गत।

: : 42 : :

जो वेदों के शब्दों में ही
उलझे रहते भारत ! अनुचित
वे अज्ञानी जाने जाते
बोलें वाणी चाहे पुष्पित।

: : 43 : :

कामी कहते सुरपुर उत्तम
यह भी बतलाते हैं पांडव
नाना कर्मों द्वारा मिलता
जीवन में हर सुख औ' वैभव।

: : 44 : :

जो इस सम्मोहन में फसकर
सुख भोगों में हों आकर्षित
उन सबकी निर्णय करने में
प्रज्ञा ना स्थिर रहती किंचित्।

: : 45 : :

त्रैगुण वर्णित वेदों में हैं
निस्त्रैगुणमय बन जा अर्जुन

निर्योग–क्षेम,[5] निर्द्वन्द्वी हो
सत निष्ठित, आत्म–परायण बन।

: : 46 : :

परिपूरित[6] जलधर मिलने पर
कूप निरर्थक सब हो जाते
वैसे ही ज्ञानी ब्राह्मी–जन
वेदों पर ना निर्भर रहते।

: : 47 : :

करने भर का तू अधिकारी
तेरा वश ना फल मिलने में
फल इच्छा तज कर्मों को कर
मत मोहित हो ना करने में।

: : 48 : :

सिद्धिः हो या, ना हो, सम रह
आसक्ति तज कर्मों को कर
सम रहना योग कहाता है
तू योगी बन (भव सागर तर।)

: : 49 : :

कर्मों को फल हित करने से
सम बुद्धिः युत करना अच्छा
फल हित कुछ करना लघुतम है
सम बुद्धिः पथ अपना सच्चा।

: : 50 : :

बुद्धी–युत योगी करते हैं
सुकृत, दुष्कृत फल अपवर्जन
कर्मों में कौशल योग समझ
यौगिक नियमों का कर पालन।

: : 51 : :

सारे बुद्धी युत ज्ञानी जन
छोड़ें कर्मों के फल बन्धन

ऐसा करने से मिलता है
अमृतमय उत्तम पद पावन।

: : 52 : :

मोह–कलुषता दल दल से जब
तेरी प्रज्ञा तर जाएगी
श्रोतव्य तथा श्रुत विषयों से
तब होवेगी यह वैरागी।

: : 53 : :

श्रुतियों[7] में उलझी बुद्धी जब
ईश्वर में निश्चल स्थिर होगी
यह निश्चित है तब अर्जुन तुम
बन जाओगे सम्यक् योगी।

: : 54 : :

अर्जुन बोले –

देव समाधित, स्थितप्रज्ञों के
कैसे कैसे होते लक्षण ?
कैसे बोलें[8] ? कैसे बैठें[9] ?
अरु कैसे वे चलते[10] भगवन !

: : 55 : :

भगवान बोले –

मन के भीतर बैठी सारी
दूर भगाते जो इच्छाएं
जो निज आत्मा में संतोषी
वे स्थित–प्रज्ञ पुरुष कहलाएं।

: : 56 : :

अव्याकुल जो दुख में रहते
अरु ना मोहित जो सुख में भी
राग, अमर्ष तथा जो भय बिन
स्थिर रहती उन मुनियों की धी।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 57 : :

शुभ पा कर जो खुश ना होते
ना उद्वेगी जब दुख आए
जो मोहित ना होते किंचित्
उन सब की धी स्थिर कहलाए।

: : 58 : :

(कठिनाई में) सब अंगों को
कछुआ सिमटा करता जैसे
करण सभी विषयों से स्थिर धी
अंकुश में रखते हैं वैसे।

: : 59 : :

प्रत्याहारी[11] विषयमुक्त हों
पर विषयों की इच्छा रहती
ईश्वर दर्शन हो जाने पर
विषयों से मिटती आसक्ति।

: : 60 : :

(विषय रसिक) ज्ञानी हठ करके
जो करणन विषयों से मोड़ें
मंथी करणन उनके मन को
बलपूर्वक विषयों से जोड़ें।

: : 61 : :

सब करणन अपने वश में कर
हो जाओ मेरे में समरस
जिन की करणन यूं बस में हैं
वे सब होते स्थिर धी मानस।

: : 62 : :

विषयों का चिन्तन करने से
विषयों में होती अनुरक्ति
सकल कामनाएं फिर पनपें
जिस कारण क्रोधित हों व्यक्ति।

: : 63 : :

क्रोध जने निश्चित सम्मोहन
यह चिन्तन को भरमाता है
दूषित प्रज्ञा करता जिस से
मानव पथ से गिर जाता है।

: : 64 : :

राग रहित विद्वेष रहित हो
जिन के वश में करण तथा मन
सब भोगों को भोगें फिर भी
वे सुखपूर्वक रहते सज्जन।

: : 65 : :

ऐसी निर्मलता होने पर
मिट जाते मानव के सब दुख
शीघ्र सभी ऐसे आनन्दित –
बुद्धि स्थिर कर, पाते हैं सुख।

: : 66 : :

अस्थिर नर में दुर्बुद्धी हो
भाव नहीं उस में शुभ जागें
इस कारण ऐसे मानव को
सुख कैसा? सुख उससे भागें।

: : 67 : :

जिस इन्द्री में मन अनुरागी
वह बुद्धी पूरी हर लेती
जैसे आशुग अपने पथ पर
नौका जल में ले चल देती।

: : 68 : :

जिस जिस ने सारे विषयों से
वश में कर ली करणन सारी
यह निश्चित है ऐसे योगी
जग में होते स्थिर धी धारी।

: : 69 : :

सब कहते हैं जिसको रात्री
उस में योगी रहते जागृत
पर जब सारे प्राणी जागें
तब योगी जन मिलते निद्रित।

: : 70 : :

चारों दिक् से नदियां आएं
सागर में ना आता अन्तर
जो सब भोगों को यूं भोगें
कामी ना बन सुख पाएं नर।

: : 71 : :

सकल कामनाएं जो त्यागें
त्यागें अभिलाषाएं, ममता
जिनमें कोई भी मद ना हो
शान्ति तथा सुख उनको मिलता।

: : 72 : :

ऐसा है वर्णन ब्राह्मी का
ब्राह्मी मानव ना भरमाएं
फिर जब मरने की बेला हो
मुक्ति परम सुख, तन तज, पाएं।

।। इति द्वितीय अध्याय।।

संदर्भ :

1. अज : जिसका जन्म नहीं होता
2. अव्यय : जिसका व्यय नहीं होता
3. अविरत : सदा रहने वाला

नोट : आत्मा शब्द 17वें व 18वें श्लोक में परमात्मा रूपक है और 19वें श्लोक में आत्मा रूपक।

4. अम्बर : कपड़े
5. अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा क्षेम कहलाता है।
6. 46वें श्लोक में जिस परिपूरित जलधर का निर्देश है, वह निस्त्रैगुण है।
7. श्रुतियों में उलझी : अनेक प्रकार की सुनी बातों में उलझी
8. कैसे बोलना : मन के भाव कैसे होते हैं।
9. कैसे बैठें : व्यवहार रहित काल में अवस्था कैसी होती है।
10. कैसे चलते : आचरण कैसा होता है।
11. प्रत्याहारी : जो विषय ग्रहण नहीं करता।

तृतीय अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

ज्ञान तथा कर्मों में केवल
ज्ञान अधिक अच्छा कहते हो
क्यों इन निर्मम कर्मों हित फिर
देव मुझे अब उकसाते हो ?

: : 2 : :

इन मिश्रित वचनों को सुनकर
प्रज्ञा है उलझी अरु हारी
निश्चय कर बतलाओ वह मग
जो सुखदायक मंगलकारी।

: : 3 : :

श्री कृष्ण बोले –

जग में होतीं दो निष्ठाएं
पहिले बतलाया है भारत
ज्ञान सुनिष्ठित ज्ञानी रहते
योगी कर्मों में रहते रत।

: : 4 : :

कर्म शुरू ना करने भर से
कोई निष्कर्मी ना बनता
निज कर्मों को तज कोई भी
परमेश्वर को ना पा सकता।

: : 5 : :

क्षण भर तक ना कोई मानव
बिन कर्मों के रह सकता है
हर कोई प्रकृतिज गुणों से
परवश कर्मों को करता है।

: : 6 : :

हठपूर्वक जो अपनी करणन
भोगों से रोकें संसारी
पर भोगों का चिन्तन करते
वे मानव हैं मिथ्याचारी।

: : 7 : :

अपने मन वश करणन करके
जो रहते हैं बिन आसक्ति
करणन द्वारा कुछ भी भोगें
वे कहलाते उत्तम व्यक्ति।

: : 8 : :

निष्क्रियता से करना अच्छा
बिन कर्मों के जीना दुष्कर
जो भी तेरा पथ निश्चित है
चलता चल अविचल उस पथ पर।

: : 9 : :

जो कारज यज्ञार्थ नहीं हैं
वे कारज बनते हैं बन्धन
यज्ञ नमित फल इच्छा तजकर
कर्म करो विधिवत् कुरुनंदन।

: : 10 : :

पूर्व समय में ब्रह्मा जी ने
यज्ञ सहित जब प्रजा रचाई
इच्छित फल हित औ' वृद्धि हित
यज्ञ करो यह बात सुझाई।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 11 : :

याज्ञिक बन देवों[1] को पूजो
देव बनेंगे सद्व्यवहारी
इन आपस के शुभ भावों से
सुख मिल जाएगा अविकारी।

: : 12 : :

देव सदा हर्षित होकर फिर
देवेंगे अर्जुन उत्तम फल
पर बिन बांटे जो भोगें ये
वे करते हैं चोरी केवल।

: : 13 : :

यज्ञशेष के भोगी मानुष
पापों से रहते निष्पापी
पर केवल अपने ही हित में
पार्थ ! पका कर खाते पापी।

: : 14 : :

अन्न करें सब प्राणी पैदा
और इसे वारिद उपजाता
यज्ञ बने मेघों का कारण
यज्ञ स्वयं कर्मों से आता।

: : 15 : :

ज्ञान करे कर्मों को पैदा
ज्ञान ईश द्वारा प्रतिपादित
(इस कारण आशय निकला यह)
ईश्वर यज्ञों में सुस्थापित।

: : 16 : :

पर जो ऐसे ना चलता है
इस जग में इस मग अनुसार
करणन का भोगी वह पापी
जीवन जीता है निस्सार।

: : 17 : :

आत्मा में रत आत्म–तृप्त जो
आत्मा में संतोषण करता
उसको कोई भी आवश्यक
कारज ना करने हित रहता।

: : 18 : :

करने और नहीं करने में
ज्ञानी को ना करण किंचित्
और जगत के भूतों में वह
ना रहता निर्भर स्वारथ हित।

: : 19 : :

इस कारण तजकर आसक्ति
कर्म करो सम्यक् तुम हर क्षण
ऐसे जो जीवन जीता है
उसको मिलते हैं नारायण।

: : 20 : :

जनक सरीखे ज्ञानीजन ने
कर्मों द्वारा पाया ईश्वर
जन मर्यादा रखने हित भी
सम्यक् अपने कर्मों को कर।

: : 21 : :

श्रेष्ठ पुरुष जो कुछ करते हैं
सारे अनुवर्तन वह करते
वे जैसी मर्यादा डालें
सब उन पद–चिन्हों पर चलते।

: : 22 : :

अप्रापण इस त्रैलोकी में
पार्थ मुझे ना किंचित् कुछ भी
मैं कुछ करने में ना वांछित
कर्मों में रत रहता फिर भी।

:: 23 ::

ध्यान लगाकर (आलस तजकर)
अगर नहीं मैं करता कारज
सब बन कर मेरे अनुगामी
बैठें अपने कर्मों को तज।

:: 24 ::

मैं कारज करना त्यागूं तो
भ्रष्ट जगत हो जाए सारा
संकर दोषों का कारण बन
मैं बन जाऊं जन हत्यारा।

:: 25 ::

आसक्ति में अज्ञानी जन
कर्मों में रत रहते जैसे
आसक्ति तज जन संग्रह हित
ज्ञानी कर्म करें निज वैसे।

:: 26 ::

ज्ञानी पुरुषों से वांछित है
अज्ञानी जन ना भरमाएं
युक्त रहें सबकी प्रज्ञाएं
सब शुभ कर्मों में जुट जाएं।

:: 27 ::

प्राकृत तीन गुणों के द्वारा
सब कर्मों का हो संचालन
पर हंकार – विमूढ़ पुरुष ही
बतलाता अपने को कारण।

:: 28 ::

गुण के गुण से मिल जाने पर
सारा जग चलता है अविचल
गुण कर्मों के तात्विक ज्ञाता
आसक्ति तज जीवें हर पल।

:: 29 ::

प्राकृत[2] तीन गुणों में उलझे
जो गुण कर्मों में हों मोहित
उन अल्पज्ञों को भी ज्ञानी
कर्मों से ना करते विचलित।

:: 30 ::

आध्यात्मिक चेतनता द्वारा
कर्म करो सब मेरे अर्पण
आशा, ममता, चिन्ता तजकर
समर करो अब हे कुरुनंदन !

:: 31 ::

ईर्षा तजकर जो श्रद्धालु
मेरे उपदेशों पर चलते
यह निश्चित है वे सब योगी
कर्मों के बन्धन से छुटते।

:: 32 ::

पर दोषी चिन्तन वाले नर
ऐसे मग पर पग ना धरते
वे अज्ञानी मोहित होकर
भ्रष्ट पुरुष सम जीवित रहते।

:: 33 ::

सब कुछ स्वाभाविक सब करते
ज्ञानी भी करते सब गुणवश
फिर ऐसे में कोई मानुष
कैसे कर सकता कुछ हठवश।

:: 34 ::

राग द्वेष करणन के दुर्गुण
मानुष के शुभ पथ के दुश्मन
ये विषयों में छुपकर रहते
इनसे बचकर रहना हर क्षण।

: : 35 : :

सद्आचारित पर धर्मों से
दोषी भी अपना है गुरुतर
अपने पर चल मरना सुखकर
पर धर्मों से भय (जीवन भर)।

: : 36 : :

अर्जुन बोले –

बिन इच्छा फिर किससे प्रेरित
पापों को करता है मानव?
बलशाली है कोई शक्ति
ऐसा लगता है, हे यादव !

: : 37 : :

श्री कृष्ण बोले –

काम जनन होता रज[3] द्वारा
क्रोध अगन जलती इस कारण
यह सब पापों का कारक हैं
महाअशन यह तेरा दुश्मन।

: : 38 : :

धुआं दमना, मल दर्पन को
जेर गर्भ ढक रखती जैसे
काम सदा सारे लोगों में
ज्ञान ढके रखता है वैसे।

: : 39 : :

हे निद्राजित ! पावक सम यह
काम अधूरा ही रहता है
यह विद्वानों का वैरी है
ज्ञान सदा यह ढक रखता है।

: : 40 : :

करणन मन अरु धी तीनों में
काम सदा रहता है स्थापित

यह आत्मा सम्मोहित रखता
प्रज्ञा को करके आच्छादित।

: : 41 : :

इस कारण सबसे पहले तुम
सब करणन पर अंकुश धारो
ज्ञान तथा विज्ञान विनाशक
काम अधम वैरी तुम मारो।

: : 42 : :

करण श्रेष्ठ ज्ञानी कहते हैं
पर इनसे भी श्रेष्ठ बहुत मन
बुद्धी मन से भी गुरुतर है
आत्मा सबसे उत्तम पावन।

: : 43 : :

बुद्धी से गुरुतर आत्मा को
समझो क्या है कैसी अर्जुन
काम अगन दुर्जय है, जीतो
बुद्धी द्वारा संयित कर मन।

।। इति तृतीय अध्याय ।।

संदर्भ :

1. देव : प्रकृति की विभूतियां, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, पेड़, पौधे, नदियां, सागर आदि।
2. माया में उलझे
3. रज – रज गुण : सांसारिक पदार्थों में सुख मानना रजो गुण कहलाता है।

चतुर्थ अध्याय

:: 1 ::

श्री भगवान बोले –

योग अनश्वर यह था मैंने
सूरज को पहिले समझाया
आद्य मनु को यह सूरज ने
जिसने निज सुत तक पहुंचाया।

:: 2 ::

राज–ऋषि गण को यह उत्तम
ज्ञान मिला था परम्परा से
बहुत समय बीता है जब से
नष्ट हुआ यह पार्थ धरा से।

:: 3 ::

योग वही तुझको बतलाया
गहन तथा जो परम, पुरातन
भक्त सखा तू है दोनों ही
समझाया केवल इस कारण।

:: 4 ::

अर्जुन बोले –

सूरज जन्मा युग पहिले था
पर तुम जन्मे हो कल यादव
ज्ञान दिया है उसको तुमने
यह कैसे हो सकता सम्भव!

: : 5 : :

भगवान बोले –

जन्म हुए तेरे अरु मेरे
कितने ही पहिले हे अर्जुन
तू भूला वे चाहे सारे
याद मुझे हैं सारे जीवन।

: : 6 : :

मैं सारे जीवों का ईश्वर
जन्म रहित मैं हूं अविनाशी
माया–स्वामी निज माया से
फिर भी बनता कायावासी।

: : 7 : :

धर्म धरा पर जब जब घटता
पापों का बल जब जब बढ़ता
मैं तब तब निज माया द्वारा
देही बन कर आया करता।

: : 8 : :

सज्जन रक्षा, दुर्जन वध हित
धर्म स्थापित करने कारण
(अपनी इच्छा द्वारा करता)
मैं हर युग में काया धारण।

: : 9 : :

लोकोत्तर[1] उद्‌भव अरु कारज
जो ये समझें मेरे समुचित
वे जब अपनी काया त्यागें
पावें मुझको तब वे निश्चित।

: : 10 : :

राग रहित भय और प्रतिघ[2] तज
जो मेरे आश्रय में आए

ज्ञान तपन द्वारा पावन हो
निश्चित वह मुझमें मिल जाए।

: : 11 : :

जो नर भजता मुझको जैसे
मैं भी उसको वैसे भजता
विद्वानों का कोई मग हो
हर मग मेरे तक आ मिलता।

: : 12 : :

जो मानव कर्मों के फल हित
करते हैं देवों[3] का पूजन
शीघ्र मिले उनको अभिलाषित
(पर मेरे ना मिलते दर्शन।)

: : 13 : :

गुण अरु कर्मों पर आधारित
वर्ण रचे मैंने चारों ये
समझ अकर्ता फिर भी मुझको
इन सब का मैं कर्ता चाहे।

: : 14 : :

मैं ना फल – इच्छा रखता हूं
ना मैं हूं कर्मों का बन्धक
जिनको यह तात्विक अनुभूति
कर्मों में ना बंधते साधक।

: : 15 : :

मोक्षाकांक्षी जो पूर्वज थे
कर्म किया करते थे यूं सब
ऐसे पूर्वजकृत कर्मों को
पार्थ करो तुम निश्चय कर अब।

:: 16 ::

कर्म, अकर्म प्रति हे भारत !
विद्वानों में रहती भ्रान्ति
समझ जिसे सब दुख छूटेंगे
समझाता हूं वह इस भान्ति।

:: 17 ::

कर्मों की गति होती गहरी
(तत्वों से हो जाओ परिचित)
कर्म अकर्म विकर्म सभी का
ज्ञान करो भारत ! तुम अर्जित।

:: 18 ::

कर्मों में जिसको अक्रियता
अक्रियता में कर्म सुभासित
वह ज्ञानी अरु सच्चा योगी
कर्मों को करता है समुचित।

:: 19 ::

काम तथा संकल्पों को तज
जो कर्मों को करते (दत्‌चित)
ज्ञान अगन पुष्कल उन सब को
ज्ञानी जन कहते हैं पण्डित।

:: 20 ::

सांसारिक सब आश्रय तजकर
जो भी नित संतोषित रहता
फल इच्छा तज कर्मों में रत
निश्चित निष्कामी वह बनता।

:: 21 ::

भोग पदारथ जो सब त्यागे
आशाएं तज जीते तन मन
तन रक्षा हित कुछ भी कर ले
वह पापी ना बनता किंचन।

: : 22 : :

सहज मिले में जो संतोषी
निर्द्वन्द्वी, निर्मत्सर[4] मानुष
जिसको सम कारज हों या ना
वह कर्ता ना कर्मों के वश।

: : 23 : :

लिप्त नहीं है जो कर्मों में
ज्ञान–अवस्थित जिसका है मन
मुक्त हुए ऐसे याज्ञिक के
कट जाते कर्मों के बंधन।

: : 24 : :

हव्य, हवन, हुतभुक[5] अरु होता[6]
जब चारों बन जाते ईश्वर
ऐसे ब्राह्मी योगी जन को
दर्शन देते हैं जगदीश्वर।

: : 25 : :

कुछ देवों की पूजा रूपी
यज्ञ क्रिया का करते पालन
कुछ योगी–जन ब्रह्म अगन में
हवन करें निज आत्मा दाहन।

: : 26 : :

संयम रूपी दमना में कुछ
करण हवन करते श्रोतादिक
करण अगन में कुछ दहते हैं
विषय सभी अपने शब्दादिक।

: : 27 : :

करण तथा अपने प्राणों का
कुछ व्यवहार करें यूं प्रतिदिन
ज्ञानजनित संयम शुषमा में
शमन करें कर्मों का हर क्षण।

: : 28 : :

ज्ञान यजन करते कुछ पढ़ लिख
योग यजन युत कुछ व्रतधारी
कुछ दानी बन धन देते हैं
कुछ करते हैं तप अति भारी।

: : 29 : :

कुछ रेचक कुछ पूरक द्वारा
पवन हवन करते हैं सम्यक्
पर दोनों को ही रोकें औ'
प्राणायाम करें कुछ कुम्बक।

: : 30 : :

कुछ भोजन परिमित कर करते –
प्राणों का प्राणों में तर्पण
ये सब यज्ञों के ज्ञाता हैं
निष्पापी बन जीते जीवन।

: : 31 : :

यज्ञशिष्ट अमृत के भोगी
पाया करते हैं जगपालक
लोक तथा परलोक धनन्जय!
यज्ञ विमुख के हों दुखदायक।

: : 32 : :

यज्ञ लिखे बहुतेरे ऐसे
वेदों की वाणी में मिलते
ये कर्मज हैं इनको जानो
इस से सारे बंधन छुटते।

: : 33 : :

भौतिक द्रव्यों के यज्ञों से
ज्ञान यजन कहलाता उत्तम
क्योंकि सब कर्मों का केवल
ज्ञान यजन में होता संगम।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 34 : :

सविनय आदरपूर्वक अपनी
स्पष्ट करोगे जो जिज्ञासा
मर्मज्ञी, तात्विक ज्ञानी जन
शान्त करेंगे ज्ञान पिपासा।

: : 35 : :

ऐसे ज्ञानी बन जाने पर
मोहित ना होगा तेरा मन
निज आत्मा में, फिर मेरे में
सब भूतों के होंगे दर्शन।

: : 36 : :

सब पापी लोगों से ज्यादा
जो पापों को तुम करते हो
ज्ञान बना कर नैया अपनी
सब पापों से छुट सकते हो।

: : 37 : :

अगनी की लपटों में जैसे
जल जाया करता सब ईंधन
ज्ञान अगन में वैसे ही सब
कर्म दहन होते कुरुनंदन।

: : 38 : :

सारे ही इस भूमंडल पर
ज्ञान समान नहीं कुछ पावन
उचित समय यह अनुभव करते
आत्मा में पूरे योगी जन।

: : 39 : :

संयित, तत्पर, श्रद्धाधारी
बन जाते ज्ञानी, हे अर्जुन!
भगवत रूपी सुख औ' शान्ति
फिर वे पाया करते तत्क्षण।

: : 40 : :

बिन श्रद्धा, अज्ञानी, संशित
भ्रष्ट करें निज जीवन परिमल
पर जीते जी अरु मरकर भी
संशित को दुख ही दुख केवल।

: : 41 : :

योगी बनकर सब कर्मों को
जो कर देता ईश्वर के अर्पण
ज्ञान मिटाता संशय जिस के
कर्म नहीं हों उसके बंधन।

: : 42 : :

इस कारण हे भारत ! अब तुम
निश्चय कर योगी हो जाओ
अज्ञानीपन के सब संशय
ज्ञान खड़ग से दूर भगाओ।

।। इति चतुर्थ अध्याय ।।

संदर्भ :

1. लोकोत्तर : दिव्य
2. प्रतिघ : क्रोध
3. देव : प्रकृति की शक्तियां
4. निर्मत्सर : ईर्ष्या रहित
5. हुतभुक : अग्नि
6. होता : यज्ञ का कर्ता

पंचम अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

कर्मों से संन्यास अवर फिर
योग यहां कहते सुखकारी
व्याख्या पूर्वक समझाओ मग
जो मंगलमय है गिरधारी !

: : 2 : :

श्री भगवान बोले –

संन्यासी योगी दोनों के
दोनों मग होते सुखदायक
पर इनमें से योगी का मग
श्रेष्ठ अधिक सुख का परिचायक।

: : 3 : :

निर–आकांक्षी, निरद्वेषी औ'
जो निर्द्वन्दी मानुष रहते
सहज कटें उनके सब बन्धन
'नित–संन्यासी'[1] वे कहलाते।

: : 4 : :

ये दोनों मग दो दिक् जाते
केवल अज्ञानी दर्शाते
सम्यक् प्रतिपादित दोनों मग
निश्चित ईश्वर तक ले जाते।

:: 5 ::

संन्यासी को जो कुछ मिलता
कर्मों द्वारा भी मिल जाता
एक समझता जो दोनों को
वह सच्चा तात्विक कहलाता।

:: 6 ::

कर्म बिना संन्यासी बनना
निश्चित होता अतिशय दुष्कर
अनुचिन्तक योगीजन केवल
जल्दी पा लेते जगदीश्वर।

:: 7 ::

जो सब में निज आत्मा समझें
जो जीतें अपनी करणन मन
वे अविकारी कुछ भी कर लें
उनके कटते कर्मज बन्धन।

:: 8 ::

तात्विक ज्ञानी छूते, सुनते
श्वासें लेते, सोते, चलते
जब वे सूंघें, देखें, खाएं
यह सोचें वे कुछ ना करते।

:: 9 ::

दृग खोलें, मूंदें या बोलें
त्यागें कुछ या पाएं किंचित्
तात्विक ज्ञानी अनुभव करते
करणन अपने कर्मों में रत।

:: 10 ::

आसक्ति तज जो भी मानुष
ईश्वर अर्पित करते कारज
वे पापों बिन ऐसे रहते
ज्यों रहता वारी में वारिज।

: : 11 : :

योगी तज करके आसक्ति
आत्मिक शुद्धि करने कारण
केवल तन मन धी करणन से
कर्मों का करते संचालन।

: : 12 : :

सारे फल ईश्वर अर्पण कर
योगी शम[2] रूपी फल पाएं
फल आसक्ति कारण कामी
बन्धन में पड़कर अकुलाएं।

: : 13 : :

जो अन्तरमन वश कर समझे
ना मैं करता ना करवाता
मन द्वारा सब कर्मों को तज
वह नवद्वारी में सुख पाता।

: : 14 : :

ईश्वर ना रचते कर्तापन –
ना कर्मों को ना रचते फल
ये सब आपस में नैसर्गिक
तीनों गुण द्वारा हों प्रतिपल।

: : 15 : :

लोगों के पापों पुण्यों को
ना धारण करते जगदीश्वर
प्रज्ञा पर पर्दा माया का
इस कारण मोहित होते नर।

: : 16 : :

जो भी मानव ज्ञानी बन कर
अपना सब अज्ञान मिटाता
उसका ज्ञान दिवाकर बनकर
ईश्वर के दर्शन करवाता।

: : 17 : :

जो कोई भी धी, मन दोनों
परमेश्वर में रखते निष्ठित
ज्ञानी होकर निष्पापी हो
परम गतिक को पाएं निश्चित।

: : 18 : :

विद्याधारी ब्राह्मण हों या
परम विनय युत कोई ज्ञानी
डोम, भषक[3] हो गज, गाए हो
ज्ञानी सम समझें सब प्राणी।

: : 19 : :

जग जीतें केवल वे मानुष
जिनका मन है साम्य–अवस्थित
वे ही निर्दोषी समता युत
परमेश्वर में हों सुस्थापित।

: : 20 : :

प्रिय विषय ना जिनको सुख दें
ना दुख देवें अप्रिय–कारी
वे ज्ञाता स्थिर–धी, बिन संशय
ईश्वर दर्शन के अधिकारी।

: : 21 : :

बाही सुख तज, बिन आसक्ति
जो भोगें अन्तर सुख वैभव
वे युक्तात्मा ज्ञानी मानव
अक्षय सुख का करते अनुभव।

: : 22 : :

विषयों से मिलकर जो उपजें –
भोग अनित, वे बहु दुख कारण
ज्ञानी मानव इस कारण हित
विषयों में ना रत करते मन।

: : 23 : :

मरने से पहले ही जिसने
काम, क्रोध, आसक्ति, त्यागी
वह मानव सच्चा योगी है
जीवन में हो सुख का भागी।

: : 24 : :

जिस योगी को अन्तर सुख है
जिसका मन ईश्वर में केन्द्रित
अन्तर–ज्ञानी ईश्वर–ध्यानी
मोक्ष परम सुख में वह निष्ठित।

: : 25 : :

निःसंशित, निष्पापी, यतियों
जिनका हर प्राणी हित जीवन
ईश्वर निष्ठित उन ऋषियों को
परमेश्वर के मिलते दर्शन।

: : 26 : :

जो ना कामी, ना क्रोधी हों
जिनके वश में है चित अपना
उन आत्मिक ज्ञानी यतियों को
चारों दिक् मिलते परमात्मा।

: : 27 : :

बाहिज विषयों को बाहर तज
मध्य भवों के स्थापित कर मन
श्वासों निश्वासों को ज्ञानी
संयित करके हे कुरुनंदन –

: : 28 : :

जीत करण मन वे बनते हैं –
प्रतिघ तथा इच्छा, भय, त्यागी
मोक्ष–परायण वे अनुचिन्तक
मुक्त सदा रहते (वैरागी)।

: : 29 : :

यजन तथा तप भोक्ता मैं हूं
मैं सब लोकों का लोकेश्वर
मैं ही जग प्रेमी, जो मानें
वे शान्ति औ' सुख पावें नर।

।। इति पंचम अध्याय ।।

संदर्भ :

1. नित संन्यासी : सब कर्म करते हुए संन्यासी रहना
2. शम : शान्ति
3. भषक : कुत्ता

षष्ठ अध्याय

: : 1 : :

श्री भगवान बोले –

सत कारज कर औ' फल तज कर
नर बनते संन्यासी योगी
निष्क्रियता से, यज्ञ बिना यूं
परम अवस्थाएं ना होंगी।

: : 2 : :

संन्यासी बनकर रहने को
योग समझते तात्विक ज्ञानी
सब संकल्पों को त्यागे बिन
'योगी' ना बन सकते प्राणी।

: : 3 : :

योगी बनना संभव होता –
मुनियों को भी कर्मों कारण
पर योगी बन जाने पर फिर
कर्मों द्वारा हो शम साधन।

: : 4 : :

करणन भोगों से निर्लेपी
जो कर्मों में ना अनुरागी
सब संकल्पों को तज करके
योगी कहलाते वे त्यागी।

:: 5 ::

शुभचिन्तक अरु वैरी दोनों
हर मानुष होता है अपना
उद्यम कर ऊपर उठ जाओ
अनुचित है नीचे आ गिरना।

:: 6 ::

शुभचिन्तक है वह मानुष जो –
जीते तन, मन, करणन सारी
पर जो मानुष इनसे हारे
वह निश्चित है अपना वैरी।

:: 7 ::

सर्दी गर्मी, सुख दुख कुछ हो
पूजे कोई या दुत्कारे
आत्मविजयी शान्तपुरुष का
आत्मा शान्त अवस्था धारे।

:: 8 ::

जिनको माटी सोना सम है
जो निर्दोषी, प्रत्याहारी[1]
समुचित ज्ञानी, विज्ञानी वे
युक्त कहे जाते सुविचारी।

:: 9 ::

श्रेष्ठ पुरुष सम समझें साधु
सम्बन्धी, शुभचिन्तक, वैरी
निष्पक्षी, मित्तर, मध्यस्थी
द्वेषी, पापी या अपकारी।

:: 10 ::

योगी एकान्तिक बैठें औ'
त्यागें आशाएं, संग्रहण[2]
तन, मन, करणन सब वश करके
सतत करें परमेश्वर चिन्तन।

: : 11 : :

ना ज़्यादा ऊंचा ना नीचा
शुद्ध जगह पर होवे आसन
जिस पर कुश हो और कुशा पर
मृगछाली हो फिर कुछ वासन।

: : 12 : :

उस आसन पर योगी बैठे
प्रत्याहारी बन संयित चित्त
योगाभ्यास करे (वह निशिदिन)
निज आत्मिक शुद्धि करने हित।

: : 13 : :

काया, शिर औ' ग्रीवा तीनों
स्थिर, सीधी रख करके समुचित
चारों दिक् से मन मोड़े औ'
फिर नासाग्र करे मन केन्द्रित।

: : 14 : :

शान्त तथा निर्भय योगी नर
ब्रह्मचर्य व्रत करके पालन
मेरे आश्रय चिन्तन में रत
संयित मन अपनाए आसन।

: : 15 : :

यूं परमेश्वर के चिन्तन में
जो मन वश कर ध्यान लगाता
जन्म मरण से पाकर मुक्ति
मोक्ष परम शान्तिक सुख पाता।

: : 16 : :

ना निरभोजी ना बहु भोजी
जीवन में बन सकता योगी
ना अतिशय सो ना कम सोकर
पार्थ कभी सिद्धिः भी होगी।

: : 17 : :

युक्त आहार, विहार सदा हो
युक्त सदा निद्रा, चेष्टाएं
तब जाकर योगी पुरुषों की
कटती हैं सब दुख बाधाएं।

: : 18 : :

जब मन संयित करके मानव
ईश्वर में स्थापित हो जाता
तब मोहक इच्छाएं छुटतीं
युक्त परम योगी कहलाता।

: : 19 : :

पवन बिना अपने पथ पर ही
जैसे दीपक जलता निश्चल
वैसे ही ईश्वर चिन्तन में
योगी निज मन रखता प्रतिपल।

: : 20 : :

ऐसी योग–अवस्था जिस में
शान्त तथा वशमें रहता मन
आत्मा ईश्वर के दर्शन कर
अपने में करता संतोषण –

: : 21 : :

करणातीत परम सुख सच्चा
जब प्रज्ञा क़रती है धारण
जब सुख पा डगमग होने का
योगी को ना रहता कारण –

: : 22 : :

श्रेष्ठ अवस्था जिसको पाकर
और रहे ना इच्छा किंचित्
और जहां पर गुरुतम दुख से
योगी जन ना होते विचलित –

: : 23 : :

हर दुख से निर्लेपी रहना
योग अवस्था यह है अर्जुन
बिन उकताए तत्पर मन से
जानो और करो यह पालन।

: : 24 : :

सकल कामनाएं संकल्पज
जो इनको छोड़ें नर नारी
औ' अपने नटखट मन द्वारा
अनुशासित कर इंद्रियां सारी –

: : 25 : :

धैर्यमयी निज प्रज्ञा द्वारा
शमन करें धीरे–धीरे मन
नारायण में स्थिर कर इस को
मनन करें केवल नारायण।

: : 26 : :

जिस–जिस कारण उलझा करता
लोगों का मन अस्थिर चंचल
उस उस कारण को ही तज कर
ईश्वर में जोड़ें यह हर पल।

: : 27 : :

शान्त तथा निष्पापी योगी
शान्त रजोगुण जो कर लेते
परमेश्वर में रत हो करके
उत्तम सुख पूर्वक वे रहते।

: : 28 : :

पाप रहित योगी इस भान्ति
हर पल ईश्वर में रत रहते
सुख पूर्वक उसको पाने पर
अतिशय आनन्दित हो जाते।

: : 29 : :

समदर्शी योगी को सब में
अपनी आत्मा होती अनुभव
और उसे अपनी आत्मा में
भूत सकल दिखते हैं पाण्डव।

: : 30 : :

मैं सारे भूतों में रहता
भूत सकल मेरे अन्तरगत
जो यूं समझें वे मेरे को
औ' मैं उनको रहता दृगगत।

: : 31 : :

सब भूतों में मैं सम व्यापित
समझ मुझे यूं फिर जो भजते
वे चाहे जो कुछ करते हों
केवल मेरे कारज करते।

: : 32 : :

औरों के अरु अपने सुख दुख
एक समान करें जो अनुभव
सम समझें जो सब लोगों को
श्रेष्ठ बहुत वे होते मानव।

: : 33 : :

अर्जुन बोले –

सम्यक् भावों द्वारा तुमने
योग मुझे जो यह समझाया
मन चंचल है स्थिर ना होगा
समझ मुझे ऐसा अब आया।

: : 34 : :

मन चंचल, मंथी[3], बलशाली
यह दृढ़ है अतिशय जगतारण

इस कारण मारुत सम इसको
वश करना अति दुष्कर साधन।

: : 35 : :

भगवान बोले –

माना मैंने मन चंचल है
कठिनाई से वश में आता
वैरागी बन कोशिश द्वारा
यह दुष्कर कारज हो जाता।

: : 36 : :

पार्थ किया ना मन वश जिसने
वह ना बन सकता है योगी
वश्यात्मन[4] की साधनपूर्वक
परम अवस्था ऐसी होगी।

: : 37 : :

अर्जुन बोले –

उर में पूरी श्रद्धा हो पर
यत्न शिथिल हों, मन हो विचलित
यौगिक सिद्धि सुख ना पाकर
कैसी उस की होती है गत ?

: : 38 : :

ब्रह्मपथिक, मोहित, निर–आश्रित
उनका कैसा होता जीवन ?
उड़ते बादल सम दोनों दिक्[5]
क्या भटका करते वसुनंदन ?

: : 39 : :

तेरे बिन कोई भी यादव
और नहीं है ज्ञानी सम्यक्
जो मेरे ये संशय सारे
दूर करे बनकर मगदर्शक।

: : 40 : :

श्री भगवान बोले –

शुभकर्मी दोनों लोकों में
नाश नहीं होते, पाते सुख
परम सखे सब ऐसे मानव
ना वे पाते दुर्गत ना दुख।

: : 41 : :

योग भ्रष्ट पर पुण्य पुरुष सब
स्वर्गादिक लोकों में जाते
वर्षों यूं रह फिर सुत बनकर
अच्छे पुरुषों के घर आते।

: : 42 : :

या स्वर्गादिक सुख ना पाकर
जन्में ज्ञानी योगी के घर
अतिशय वह दुर्लभ जीवन है
सहज जिसे पा लेते वे नर।

: : 43 : :

पूर्व सभी उन संस्कारों को
सहसा पावे उनकी धी फिर
और इसी कारण वे मानुष
शुभ कर्मों में होते तत्पर।

: : 44 : :

शब्दब्रह्म से ऊपर उठते[6]
जो केवल हैं जिज्ञासू जन
ईश्वर में आकर्षित होते
योग–भ्रष्ट, पहिले तप कारण।

: : 45 : :

बहुतेरे जन्मों में जब नर
सम्यक् साधन करता जाए
सारे पापों से छुट करके

परम अवस्था को वह पाए।

: : 46 : :

तापस, ज्ञानी, कामी जन से
उत्तम श्रद्धा–युत योगीजन
इस कारण इस उत्तम मग को
तुम अपनाओ अपना साधन।

: : 47 : :

सब योगी पुरुषों में जो भी
भजन करे श्रद्धायुत हो नित
वह योगी सबसे उत्तम है
ऐसा मेरा मत है निश्चित।

।। इति षष्ठ अध्याय ।।

संदर्भ :

1. प्रत्याहारी : जितेन्द्रिय
2. संग्रहण : संग्रह करना
3. मंथी : दूध दही को मथानी में जैसी क्रिया होती है।
4. वश्यात्मन : जिसने अपने आप को वश में कर लिया है
5. दोनों दिक् : भगवत् प्राप्ति और सांसारिक भोग
6. शब्द ब्रह्म से ऊपर उठना : वेद के शब्दार्थ में न उलझकर वेद मंत्रों के भाव में लीन होना।

सप्तम अध्याय

:: 1 ::

भगवान बोले –

मेरे में रख कर आसक्ति
औ' नित रहकर मेरे आश्रय
पार्थ सुनो कैसे मेरा हो
पूर्ण तथा निःसंशित परिचय।

:: 2 ::

ज्ञान[1] तुझे विज्ञान[2] सहित यह
सहविस्तार करूंगा वर्णन
जिस का ज्ञाता हो जाने पर
शेष नहीं रहता कुछ अर्जुन।

:: 3 ::

लाखों लोगों में कोई है
जो इस सिद्ध डगर पर चलता
पर इनमें से केवल कोई
मेरा सच्चा रूप समझता।

:: 4 ::

पृथिवी, अम्बर, अगनी, आशुग
वारी, धी, हंकार तथा मन
इन आठों तत्वों से बनती
मेरी सारी माया अर्जुन।

::5::

ये आठों अपरा (जड़ माया)
जीव परा है (यह चेतन है)
और परा के द्वारा मैंने
जगत किया सारा धारण है।

::6::

भूत सभी पैदा होते हैं
इन जड़, चेतन तत्वों द्वारा
मैं ईश्वर जग का कर्ता हूं
मैं ही संहारूं जग सारा।

::7::

जग में ऐसा कुछ भी ना है
जो मेरे से भी है गुरुतर
मणियों सा सज्जित रहता है
सब कुछ जग का मेरे भीतर।

::8::

शब्द गगन में, जल में मैं रस
मैं ही शशि, रवि में आलोकित
मैं ही पुरुषों में पौरुष औ'
'प्रणव' सभी वेदों में वर्णित।

::9::

तेज अगन का मैं परमेश्वर
मैं ही गंध धरा की पावन
मैं तापस पुरुषों का तप औ'
सब भूतों का जीवन कारण।

::10::

बीज सनातन सब भूतों का
मैं ही परमेश्वर हूं केवल
मैं विद्वानों में प्रज्ञा हूं
तेजस्वी का तेज (परम बल)।

: : 11 : :

काम रहित जो, राग रहित जो
मैं हूं बलशाली का वह बल
काम जगत में जो शास्त्रोचित
वह भी मैं मानव में परिमल।

: : 12 : :

मैं सात्विक, राजस औ' तामस
सब भावों का निश्चित कारण
फिर भी ना ये मुझ में रहते
औ' ना मैं इनमें 'नारायण'।

: : 13 : :

सत, रज, तम तीनों भावों में
सारा जग मोहित भरमाया
मैं अव्यय, तीनों से ऊपर
समझ नहीं लोगों को आया।

: : 14 : :

त्रिगुणमयी, दैवी, आलौकिक
मेरी माया अतिशय दुस्तर
पर जो मेरी शरणागत वे
तर जाते यह माया सागर।

: : 15 : :

नीच, अधम, अज्ञानी, आसुर
जो माया द्वारा भरमाएं
जिनको दूषित कारज प्यारे
वे ना मुझ ईश्वर को ध्यायें।

: : 16 : :

आर्त[3] पुरुष या अर्थार्थी[4] या
जिज्ञासु नर या ज्ञानी जन
जग में केवल ऐसे चारों
मेरा करते हैं आराधन।

: : 17 : :

युक्त सभी मेरे भक्तों में
उत्तम होते केवल ज्ञानी
प्यार सदा वे मुझको करते
और मुझे वे प्यारे प्राणी।

: : 18 : :

वैसे तो ये सब अच्छे हैं
पर मेरी आत्मा ज्ञानी जन
वे युक्तात्मा मेरे में स्थित
उत्तम होते (पावें सुख धन)

: : 19 : :

कितने जन्मों के अन्तर पर
सब ईश्वर है यह हो अनुभव
पर ऐसे सज्जन दुर्लभ हैं
जिनको यह होता सुख संभव।

: : 20 : :

स्वप्रेरित हो भोग नमित जो
हे भारत मानव भरमाते
(मुझ को तज कर) जो देवों को[5]
विध पूर्वक आस्था से ध्याते –

: : 21 : :

श्रद्धा से जिन जिन देवों का
वे कामी करते हैं पूजन
उन भक्तों का उन देवों में
मैं स्थिर रखता हू श्रद्धाधन।

: : 22 : :

जो मानुष श्रद्धा के द्वारा
जिन देवों का करते पूजन
उनको इच्छित फल मिल जाते
पर यह होता मेरे कारण।

: : 23 : :

पर ऐसे सब अल्पज्ञों के
नश्वर होते हैं सारे फल
अपने भक्तों को मैं मिलता
वे देवों को मिलते केवल।

: : 24 : :

उत्तम अरु अविनाशी मेरा
रूप नहीं समझें अज्ञानी
मेरा ना वर्णन हो सकता
व्यक्त मुझे समझें वे प्राणी।

: : 25 : :

मैं हूं अज अरु अव्यय ईश्वर
पर यह ना समझें मूरख जन
मैं अपनी निज माया द्वारा
सब को ना देता हूं दर्शन।

: : 26 : :

भूत भविष्यत वर्तमान के –
सारे भूतों का मैं ज्ञानी
पर जो मुझको समुचित समझे
ऐसा ना है कोई प्राणी।

: : 27 : :

द्वेष तथा इच्छाओं द्वारा
द्वंद्व हुए हैं पैदा सारे
प्राणी इन में मोहित होकर
अज्ञानी बनते (बेचारे)।

: : 28 : :

अपने शुभ कर्मों द्वारा जो
पापों से छुटकारा पाते
दृढ़ निश्चेयी निर्द्वन्द्वी वे
केवल मुझ ईश्वर को पाते।

: : 29 : :

मरण जरा से छुटने के हित
जो मेरे आश्रय में आते
वे सब आत्मा, परमात्मा औ'
कर्मों के ज्ञाता बन जाते।

: : 30 : :

अधिभूत मुझे जो नर समझें
अधिदेव अवर अधियज्ञ अनग
अन्तिम क्षण वे मुझको भजते
इस कारण उनके छूटें अघ[6]।

।। इति सप्तम अध्याय ।।

संदर्भ :

1. ज्ञान : आत्मा संबंधी ज्ञान
2. विज्ञान : शास्त्रों द्वारा दिए गए ज्ञान को व्यवहार में लाने का ज्ञान।
3. आर्त : दुखी
4. अर्थार्थी : अर्थ की कामना वाला
5. देव शब्द का अर्थ यहां प्रकृति की भिन्न–भिन्न शक्तियों से जैसे सूरज, चंदा, विद्युत आदि से है।
6. अघ : पाप

अष्टम अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

ब्रह्म किसे, अध्यात्म किसे औ'
कर्म किसे कहते जगदीश्वर
अधिभूत किसे, अधिदैव किसे
यह बतलाओ तुम अब सत्वर !

: : 2 : :

अधियज्ञ किसे ? औ' यह कैसे
काया में रहता मधुसूदन
यह युक्त पुरुष कैसे समझे
जीवन का जब हो अन्तिम क्षण?

: : 3 : :

श्रीकृष्ण बोले –

जो अक्षर है अविनाशी है
वह ब्रह्म कहाता नारायण
'अध्यात्म' अनग आत्मा वाचक
जड़ चेतन कर्मों के कारण।

: : 4 : :

'अधिभूत' समझते ज्ञानी क्षर
'अधिदैव' पुरुष है कहलाता
'अधियज्ञ' अनग विष्णु रूपी–
'मैं' काया में स्थापित रहता।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 5 : :

अन्तिम घड़ियों में जो केवल
मेरा करता रहता चिन्तन
काया छुटने पर वह मानव
निश्चित मेरे करता दर्शन।

: : 6 : :

अंत समय पर जिस मानव का
हे अर्जुन! होता जैसा मन
उस मानव को उन भावों सम
मिल जाता कोई नव जीवन।

: : 7 : :

मेरा हर पल चिन्तन करते
रण में जूझो अर्जुन जाओ
प्रज्ञा, मन मेरे अर्पण कर
निश्चित प्राप्त मुझे कर पाओ।

: : 8 : :

जिस जिस भी योगाभ्यासी का
भटका ना करता किंचित् मन
वह नित चिन्तन द्वारा योगी
परमेश्वर के पाए दर्शन।

: : 9 : :

आद्य, पुरातन, दिनकरवर्णी[1]
जो बिन कलमश, द्रष्टा, पालक
सूक्ष्मतम उस तमस रहित का
जो मानव बनता है साधक –

: : 10 : :

वह योगी अन्तिम घड़ियों में
कूर्चरस्थ[2] प्राण करता नियमन
निश्चल–मन मेरे चिन्तन से
फिर पा लेता है नारायण।

: : 11 : :

जिसको ज्ञानी कहते 'अक्षर'
जिस मग पर चलते योगीजन
जो वर्णी जन[3] का भी मग है
थोड़े में सुन उसका वर्णन।

: : 12 : :

योग धारणा स्थित, संयम से –
सब द्वारों का करके नियमन
अपने हिय में मन कर स्थापित
प्राण करो मस्तक में धारण –

: : 13 : :

ॐ परम अक्षर रूपी 'मैं'
मेरा करते–करते चिन्तन
जो अपनी काया को त्यागें
उत्तम गत वे पावें तत्क्षण।

: : 14 : :

जो मन मेरे में कर करते
नित्य निरंतर मेरा चिन्तन
'मैं' अपने ऐसे भक्तों को
सहज सुलभ होता नारायण।

: : 15 : :

जग में ऐसी उत्तम सिद्धि
सज्जन पुरुषों ने पाई है
उनको ना फिर जीवन मिलता
जो क्षणभंगुर दुखदायी है।

: : 16 : :

ब्रह्म लोक अरु अन्य लोक ये
सब के सब हैं पुनरावर्ती[4]
पर जिसने भी मुझको पाया
उस मानव को मिलती मुक्ति।

: : 17 : :

ब्रह्मा का दिन भी, रात्रि भी
एक हज़ार महा–युग[5] की है
ऐसी तात्विक समझ जिसे है
काल गणन सच्ची उस की है।

: : 18 : :

ब्रह्मा जी का दिन जब आए
सकल व्यक्त, अव्यक्त रचाए
औ' ब्राह्मी रात्रि आने पर
व्यक्त उसी में जा मिल जाए।

: : 19 : :

जब रात्री आती तब परवश
भूत सकल भारत मिट जाते
पर प्रातः के आने पर फिर
बरबस फिर से जीवन पाते।

: : 20 : :

इस अव्यक्त परे सत्ता है
जो अव्यक्त सनातन 'भगवन'
भाव रूप वह, ना मिटती है
जब भूतों का होता नाशन।

: : 21 : :

यह अव्यक्त तथा अक्षर ही
मानव की सबसे उत्तम गत
इसको पाकर मिलती मुक्ति
परम धाम यह मेरा भारत।

: : 22 : :

भूत सकल जिसके अन्तर्गत
जिस कारण फैला जग सारा
उसको पाया जा सकता है
केवल अविचल भक्ति द्वारा।

: : 23 : :

सुन ! मरने पर कब हे भारत !
मुक्त हुआ करते हैं योगी
और सुनो कब कब मरने पर
फिर काया अपनानी होगी।

: : 24 : :

ज्योतिर्मय अगनी में, दिन में
शुक्ल पक्ष में, उतरायण में
प्राण तजें जो भी योगी वे
मिल जाते हैं नारायण में।

: : 25 : :

कृष्ण पक्ष, भग दक्षिण गामी
रात्रि हो, दूमिल दमना हो
चंदा से ज्योर्तिमय हो फिर–
जीवन मिलता जब मरना हो।

: : 26 : :

पहला मग उजयारे का है
दूजे मग में है अंधियारा
मोक्ष मिले पहले मग पर चल
जीना मरना दूजे द्वारा।

: : 27 : :

जो ये दोनों मग पहचानें
उनका ना होता मोहित मन
इस कारण तुम भी आजीवन
योगी बन कर जीओ जीवन।

: : 28 : :

वेद पठन, मख, तप, दानादिक
योगी समझें सबके सब फल

फिर उन सबसे ऊपर उठकर
आद्य परम पद पावें (परिमल)।

।। इति अष्टम अध्याय ।।

संदर्भ :

1. दिनकर वर्णी : सूर्य के समान आभायुक्त
2. कूर्चस्थ : भृकुटी
3. वर्णी जन : ब्रह्मचारी
4. पुनरावर्ती : पुनः चक्कर देने वाले
5. महा—युग : चतुर्युग – 43 लाख 20 हजार वर्ष

नवम अध्याय

: : 1 : :

हे निर्दोषी, चिन्तक अर्जुन !
ज्ञान[1] गहन विज्ञान[2] सहित सुन
जिस का ज्ञाता बनकर के तू
तर जाए दुख रूपी त्रिभुवन।

: : 2 : :

यह सब विद्याओं में उत्तम
गुह्य, परम, पावन अतिशय है
प्रत्यक्ष–फली है यह धर्मद है
और सुगमतम यह अव्यय है।

: : 3 : :

ऐसे धार्मिक अनुशीलन में
जो विश्वास नहीं रखते हैं
वे मेरे दर्शन ना पाकर
फिर फिर जीते अरु मरते हैं।

: : 4 : :

मुझ अव्यक्त परम आत्मा से
परिपूरित है जग यह सुन्दर
भूत सकल मेरे में स्थित पर
मैं रहता ना इनके अन्दर।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 5 : :

मेरे से पोषित उत्पादित
भूत नहीं हैं मेरे में स्थित
देखो माया मेरी आत्मा
भूतों में ना होती स्थापित।

: : 6 : :

सर्वग गुण धारी यह आशुग
जैसे रहती नित्य गगन में
भूत सदा सारे इस जग के
रहते मुझ में (परम सदन में)।

: : 7 : :

कल्प शुरू जब जब होते हैं
मैं भूतों को जीवन देता
फिर कल्पान्त समय आने पर
मैं इन सब को लय कर लेता।

: : 8 : :

त्रिगुण–मयी माया है सारी
मैं करता अपने में धारण
भूत सकल माया के वश हैं
मैं इनको दूं फिर फिर जीवन।

: : 9 : :

सब कर्मों से निर्लेपी मैं
मैं बन वैरागी रहता नित
कर्म मुझे अर्जुन इस कारण
बन्धन में ना करते बन्धित।

: : 10 : :

मेरी सत्ता के अन्तरगत
माया रचती जड़ औ' चेतन
फिर इस कारण सारे जग में
जीना मरना होता नियमन।

:: 11 ::

सब भूतों का मैं ईश्वर हूं
बालिश ऐसा ना पहचानें
मानुष रूपी इस काया में
तुच्छ मुझे वे अर्जुन मानें।

:: 12 ::

ज्ञान कर्म अरु आशाएं जो
व्यर्थ रखा करते मूरख ज़न
आशर[3] आसुर[4] सम बन कर वे
रखते हैं मोहित अपना मन।

:: 13 ::

मैं अव्यय, भूतों का कारण
समझें यह दैवी गुण धारी
मेरा ही पूजन करते हैं
जो ऐसे सात्विक संसारी –

:: 14 ::

वे दृढ़–व्रतधारी कोशिश से
मेरा ही नित करते कीर्तन
ध्यान मगन हो नतमस्तक हो
भक्तिपूर्वक करते पूजन।

:: 15 ::

कुछ समझें सर्वतमुख मैं ही
और नहीं कोई भी सत्ता
कुछ इस जग को द्वैत समझते
कुछ को यह बहुरूपी लगता।

:: 16 ::

श्रोत,[5] स्मार्त,[6] स्वधा[7] औषध मैं
मैं ही कहलाता वैश्वानर
वैदिक मंत्र तथा घृत मैं हूं
और हवन भी मैं (पीताम्बर)।

: : 17 : :

मैं सारी जगती का धारक
मात, पिता, दादा कहलाता
वेद्य, पवित्तर, ॐ तथा मैं
साम यजुर ऋक मैं (जग त्राता)।

: : 18 : :

उत्तम गत, स्वामी, साक्षी मैं
मैं घर, शरणद, साथी, पालक
प्रलय, निधान[8], प्रभव आधार
मैं अव्यय, अविनाशी कारक।

: : 19 : :

मैं जग में सूरज बन तपता
नियमन कर वर्षा बरसाता
मैं ही अमृत, मैं ही मृत्यु
मैं सत और असत कहलाता।

: : 20 : :

त्रिवेदी, सोमी, निष्पापी
यज्ञ करें जो स्वर्गादिक हित
पुण्यों कारण स्वर्गपुरी जा
भोग करें दैवी (अपरिमित)।

: : 21 : :

ऐसे वैदिक धर्मी के सुख
जब भोगों कारण मिट जाते
विस्तृत सुर पुर तज वे कामी
इस भूतल पर फिर से आते।

: : 22 : :

नित्य युक्त, निष्कामी मेरा
जो श्रद्धा से करते चिन्तन
योग[9] क्षेम[10] ऐसे भक्तों का
मैं ईश्वर करता हूं नियमन।

: : 23 : :

श्रद्धा से कतिपय देवों की
जो करते हैं पूजा निशिदिन
यह पूजन चाहे ना विधिवत
फिर भी यह मेरा है पूजन।

: : 24 : :

भोक्ता अरु स्वामी यज्ञों का
कोई मानव ना बिन मेरे
पर अज्ञानी मानव जग में
जीवन ले ले करते फेरे।

: : 25 : :

देवों को पाएं देवार्ची
पितरार्चक पितरों की संगत
भूतार्चक भूतों को मिलते
अपने भक्तों को मैं भारत।

: : 26 : :

सुमन–छदन, फल या जल जो नर
भक्ताई से करता अर्पण
उस निष्कामी प्रेमी का वह
प्रेम सहित करता मैं सेवन।

: : 27 : :

जो जो कुछ भी तुम करते हो
वह मेरे चरणों में धर दो
दान, हवन, तप, खाना, पीना
ये सब मेरे अर्पण कर दो।

: : 28 : :

सकल शुभाशुभ कर्मों के फल
फिर छुट जाएंगे हे अर्जुन!
योग युक्त सन्यासी बन कर
मेरे पाओगे तुम दर्शन।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 29 : :

द्वेष्य नहीं ना प्रेमी कोई
मैं सब भूतों में सम वासी
मैं प्रेमी भक्तों में रहता
औ' वे मेरे में सब न्यासी।

: : 30 : :

बहुत दुराचारी तक कोई
प्रेमी बन जब मुझको ध्याते
वे इस शुभ निश्चय के कारण
निश्चित है सज्जन कहलाते।

: : 31 : :

वे जल्दी बन कर धर्मात्मा
पावें शाश्वत सुख रूपी धन
इस कारण ऐसे भक्तों का
नष्ट नहीं होता है जीवन।

: : 32 : :

शूद्रों में जन्मा या पापी
वैश्य पुरुष हो चाहे वनिता
जो भी मेरी शरणागत है
मोक्ष परम सुख उसको मिलता।

: : 33 : :

फिर पुण्यात्मा ब्राह्मणजन औ'
ऋषियों भक्तों का क्या कहना
क्षणभंगुर दुखरूपी तन है
तू मेरा नित पूजन करना।

: : 34 : :

ध्यान लगा कर, मन द्वारा कर –
मेरी नमना पूजा भक्ति

मत्प्रायण! तब तेरी आत्मा
मुझ को पा, पाएगी मुक्ति।

।। इति नवम अध्याय ।।

संदर्भ :

1. ज्ञान : आध्यात्मिक ज्ञान
2. विज्ञान : अनुभव द्वारा प्राप्त रहस्यों का ज्ञान
3. आशर : राक्षस
4. आसुर : पिशाच
5. श्रोत : श्रोत कर्म
6. स्मार्त : यज्ञ कर्म
7. स्वधा : पितरों के निमित्त दिया गया अन्न
8. निधान : प्रलय काल में सम्पूर्ण भूत जिसमें समा जाते हैं।
9. योग : जो प्राप्त नहीं है, उसको प्राप्त करना
10. क्षेम : जो प्राप्त है, उसकी रक्षा करना
(नोट : चौथे और पांचवें श्लोक का भाव है – भगवान निर्लेप रहते हैं।)

दशम अध्याय

::1::

भगवान बोले –

परम वचन ये तात्विक मेरे
फिर से श्रवण करो तुम अर्जुन
प्यार मुझे तुम अतिशय करते
इस कारण करता हूं वर्णन।

::2::

ऋषि तथा सुरपुर वासी भी
मेरे उद्भव को ना जानें
मैं सबका आदिक कारण हूं
इस कारण ना वे पहचानें।

::3::

मैं ही अज हूं और अनादि
मैं सब लोकों का लोकेश्वर
जो तात्विक ज्ञानी यह समझें
वे पापों से छुट जाते नर।

::4::

शम, दम, सुख, दुःख, असम्मोहन[1]
क्षमा, जनन, मरने का नियमन
सत्य, ज्ञान, धी, भय, निर्भयता
ये सब होते मेरे कारण।

:: 5 ::

यश, अपयश, संतोष, अहिंसा
समता तप जीवन अपवर्जन
भूतों के नाना भावों को –
पैदा कर, करता संचालन।

:: 6 ::

चारों ही सनकादिक पूर्वज
सकल मनु अरु सप्त ऋषिगण
सब मेरे संकल्प जनित हैं
सकल–प्रजा है जिनके कारण।

:: 7 ::

मेरे यौगिक बल वैभव की
जिसको तात्विक ज्ञान सबलता
निश्चल ध्यान योग द्वारा वह
निःसंशित मेरे में मिलता।

:: 8 ::

जगत किया मैंने यह पैदा
सब चेष्टाएं मेरे कारण
ज्ञान हुआ यह जिन भक्तों को
वे सब करते मेरा चिन्तन।

:: 9 ::

जो मेरी नित चर्चा करते
प्राण तथा मन करके अर्पण
वे संतोषी बन कर रहते
मेरी ही मस्ती में हर क्षण।

:: 10 ::

ऐसे युक्त पुरुष जो मुझको
श्रद्धा पूर्वक हर पल ध्याते
मैं उनको प्रज्ञा देता हूं
जिस कारण वे मुक्ति पाते।

: : 11 : :

उनके अन्तस् में मैं बैठा
उन पर अनुकम्पा करता हूं
प्रज्ञा रूपी दीपक द्वारा
उनका अन्धियारा हरता हूं।

: : 12 : :

अर्जुन बोले –

ब्रह्म परम तुम, धाम परम तुम
परम सनातन, अज अरु पावन
परम अलौकिक तुम देवेश्वर
सर्वव्यापक तुम नारायण।

: : 13 : :

ऐसी ही व्याख्या करते हैं
व्यास, असित, देवल, नारद गण
ऐसा ही तुम भी नारायण
मुझ से करते हो अब वर्णन।

: : 14 : :

जो कुछ तुम मेरे हित कहते
सत्य वचन मैंने वह माना
देव तथा दानव दोनों ने
रूप तिहारा ना पहचाना।

: : 15 : :

तुमने सब भूतों को जन्मा
तुम सब भूतों के भूतेश्वर
केवल तुम समझो अपने को
अपने द्वारा हे जगदीश्वर।

: : 16 : :

व्याप्त किया है जिस शक्ति से
सब भूतों को तुमने भगवन

दिव्य परम वैभव वह केवल
तुम कर सकते पूरा वर्णन।

: : 17 : :

सतत विचिन्तन द्वारा तुझ से
कैसे हो जाऊं मैं परिचित
किन किन भावों द्वारा तेरा
चिन्तन करना चाहिए समुचित?

: : 18 : :

इन अमृत वचनों को सुनकर
तृप्त नहीं हो पाया माधव
व्याख्या कर अब फिर बतलाओ
अपना यौगिक बल औ' वैभव।

: : 19 : :

श्रीकृष्ण बोले –

दिव्य शक्तियां जो मेरी हैं
अन्त नहीं उनका कुरुनंदन
मुख्य यहां केवल उनमें से
तेरे हित करता हूं वर्णन।

: : 20 : :

सब भूतों के अन्दर बैठा
मैं ही सब भूतों का आत्मा
मैं सब भूतों का आदिम हूं
मध्य, अन्त भी मैं परमात्मा।

: : 21 : :

मैं आदित्यों में वामन हूं
ज्योति पुंज 'मैं' श्रेष्ठ विभाकर
मैं आशुग में अनग! मरीचि
अम्बर के तारों में शशधर।

: : 22 : :

साम कहाता मैं वेदों में
मैं ही देवों में सुत्रामन[2]
सब जीवों में चेतनता औ'
मैं ही करणन में चंचल मन।

: : 23 : :

वित्तेश्वर यक्षों, असुरों में
एकादश रुद्रों में स्थाणु
पर्वत शिखरों में मैं मेरू
औ' वसुओं में पार्थ ! कृशानु।

: : 24 : :

देव पुरोहित गीष्पति मैं
स्वामी – कार्तिक सैनानायक
सारे तालों में सागर औ'
मैं ही सारे जग का धारक।

: : 25 : :

जप कहलाता मैं यज्ञों में
मैं ही वचनों में ओंकार
मैं स्थावर मैं अचल हिमालय
भृगु ऋषि मेरा अवतार।

: : 26 : :

सब वृक्षों में पीपल पादप
देवऋषि गण में मैं नारद
चित्ररथ गंधर्व जनों में –
अरु सिद्धों में कपिल विशारद।

: : 27 : :

अमृत मंथन द्वारा निकला
उच्चैःश्रवा मैं हूं सैंधव
मैं ही ऐरावत हाथी औ'
पुरुषों में पार्थिव[3] मैं माधव।

: : 28 : :

कामधेनु मैं हूं गौओं में
वज्र सभी शस्त्रों में नाम
मैं ही सर्पों का राजा हूं
और जनन हित मैं हूं काम।

: : 29 : :

शेष–नाग मैं सब नागों में
मैं जलचर में पार्थ वरुण हूं
अर्यमा नामक पित्रेश्वर
राजाओं में स्वयं शमन[4] हूं।

: : 30 : :

दैत्यों में प्रहलाद तथा मैं
समय गणन करने वालों में
सिंह बना पशुओं में रहता
और गरुड़ उड़ने वालों में।

: : 31 : :

शस्त्रधारियों में दशरथ सुत
मैं हूं नदियों में त्रिस्रोता[5]
मकर मुझे जलचर में समझो
मैं आशुग बन पावन करता।

: : 32 : :

सर्गों का आरम्भ तथा मैं
मध्य, अन्त भी मैं कुरुनंदन!
सकल विवादों में तार्किकता
ब्रह्म ज्ञान विद्या मैं पावन।

: : 33 : :

मैं हूं 'अ' वर्ण माला में
द्वंद समासों में मैं अर्जुन
अक्षय काल, विराट पुरुष औ'
सारा जग करता मैं धारण।

: : 34 : :

मैं सबके मरने का कारण
मैं ही सबको देता जीवन
मैं ईश्वर, तिय–यश, श्री–वाणी
मेधा, स्मृति, क्षमा, धीरज धन।

: : 35 : :

छंदों में गायत्री मैं हूं
गायन श्रुतियों में वृहत्साम
मैं मासों में माघ मास हूं
कुसुमाकर ऋतुओं में नाम।

: : 36 : :

मैं छलिया पुरुषों में केतव
तेजस्वी का तेज परम धन
विजय–श्री भी दृढ़ निश्चय भी
सात्विक पुरुषों का सात्विक पन।

: : 37 : :

मैं मुनियों में व्यास मुनि औ'
मैं ही सब कवियों[6] में उशना[7]
मैं पांडव कुल में अर्जुन हूं
वृष्णी वंशज में मैं कृष्णा।

: : 38 : :

दंड दमन करने वालों का
जय इच्छुक जन में कौशलता
मौन सदा मैं हूं गुह्यों में
ज्ञानी जन में ज्ञान (सबलता)।

: : 39 : :

सब भूतों का कारक जो है
वह भी मैं हूं, हे कुरुनंदन
कोई कुछ भी मेरे बिन ना
चाहे जड़ हो या हो चेतन।

: : 40 : :

यह जो कुछ अब तक समझाया
संक्षेपन यह वर्णन इसका
मेरी माया विस्तृत इतनी
अन्त नहीं कोई भी जिस का।

: : 41 : :

वैभव, शोभा या ऊर्जा युत
जो कुछ भी भू पर है दृगगत
मेरे आंशिक तेजस द्वारा
वह सारा कुछ होता निर्मित।

: : 42 : :

ज्ञान बहुत अर्जित करने पर
तुझको कोई है क्या कारण ?
अपने आंशिक तेजस द्वारा
जगत किया यह मैंने धारण।

।। इति दशम अध्याय।।

संदर्भ :

1. असम्मोहन : मोह न होना
2. सुत्रामन् : इन्द्र देवता
3. पार्थिव : राजा
4. शमन : धर्म राज
5. त्रिस्रोता : गंगा
6. कवि – शब्द का अर्थ विद्वान् समझना चाहिए।
7. उशना : शुक्राचार्य

एकादश अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

तुमने गुह्य परम आध्यात्मिक
कृपया जो सन्देश सुनाया
इसके द्वारा तुमने मेरा
मोह मिटा कर दूर भगाया।

: : 2 : :

जनन तथा लय सब भूतों का
तुमने समझाया सब सम्यक्
अपनी अविनाशी महिमा भी–
समझाई है व्याख्या पूर्वक।

: : 3 : :

यह निश्चित है तुम वैसे हो
जैसा तुम करते हो वर्णन
पर इच्छा है वह वैभव मैं
निज नयनों से देखूं भगवन।

: : 4 : :

सम्भव हो तो पूरी कर दो
यह अभिलाषा अब गिरधारी
अपने अविनाशी दर्शन दो
समझो जो इसके अधिकारी।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

::5::

भगवान बोले –

मेरी काया के लाखों हैं
रंग तथा आकार (चतुर्दिक)
बहुरंगी औ' बहुरूपी वे
सबके सब देखो आलौकिक।

::6::

आदित्यों, रुद्रों, नासत्यों[1]
वसुओं, मरुदों के कर दर्शन
विसमित कर डालें जो तुझ को
देखो अनदेखे! हे सज्जन।

::7::

मेरी इस काया के अन्दर
देखो जड़, चेतन एकत्रित
और अधिक भी जो इच्छा हो
वह सब कुछ है इसमें दृगगत।

::8::

पर इन लौकिक नयनों द्वारा
ये देवी दर्शन ना सम्भव
दिव्य नयन देता हूं, देखो –
मेरा यौगिक बल औ' वैभव।

::9::

संजय बोले –

योगेश्वर उस दुखनाशक ने
गहन वचन ये सब समझाए
हे राजन फिर अर्जन को निज
वैभव मय दर्शन दर्शाए।

::10::

उस काया में अद्भुत दर्शन
उसमें कितनी आंखें, आनन

दैवी आभूषण औ' दैवी–
शस्त्र किए थे उसने धारण।

: : 11 : :

उसमें दैवी माला, अम्बर
दिव्य महक थी, दैवी लेपन
अन्त नहीं चारों दिक् मुख थे
आश्चर्यों युत थे नारायण।

: : 12 : :

आपस में मिलकर के नभ में
लाखों भी चमकें जो दिनकर
वह आभा उस जगदीश्वर की
फिर भी होगी उनसे बढ़कर।

: : 13 : :

उस दैवी काया के ऊपर
अर्जुन ने जब देखा समुचित्त
जगत विभाजित जो बहुविद है
उसमें था वह सब एकत्रित।

: : 14 : :

कर बांधे अरु नतमस्तक कर
पुलकित विसमित हो कुरुनंदन
भूतों के भूतेश्वर से वह
बोले ऐसे तब हे राजन!

: : 15 : :

अर्जुन बोले –

तुझमें सारस[2] पर ब्रह्मा हैं
देवों, ऋषियों के समुदाय
दिव्य भुजग हैं, शिव शंकर हैं
भूतों ने आसन अपनाए।

: : 16 : :

कितने कर तेरे विश्वेश्वर
कितने उदर–नयन अरु आनन
आद्य नहीं ना मध्य, अंत है
रूप अनन्त किए तुम धारण।

: : 17 : :

मुकुट, गदा ले, चक्र सजाकर
सूरज जैसी आभा छाई
दीप्त अपार, गहन चारों दिक्
तुम ने जो काया दिखलाई।

: : 18 : :

ज्ञेय, परम अक्षर केवल तुम –
सबसे उत्तम जग का आश्रय
शाश्वत नियमों के तुम रक्षक
परम–सनातन तुम हो अव्यय।

: : 19 : :

बहु बल, बहु भुज, रवि शशि लोचन
ज्वाला सम चमके मुख न्यारा
आद्य–मध्य–ना अन्त कहीं है
तेज तपाता यह जग सारा।

: : 20 : :

नभ, धरती का पूरा अन्तर
औ' सब दिक् पूरित तव कारण
इस उत्कट दैवी दर्शन से
दुख में त्रैलोकी नारायण।

: : 21 : :

सब सुर तुझमें जाते भयतुर
कर बांधे करते तव पूजन
स्वस्ति ! स्वस्ति ! सिद्ध ऋषि कह
तेरा वे करते गुण गायन।

: : 22 : :

साध्य, वसु, आदित्य, रुद्रगण
विश्वे, मारुत, अर्कज, आसुर
यक्ष, सिद्ध, गंधर्व, पितर, सब
देखें तुझको विस्मित होकर।

: : 23 : :

बहुत नयन, मुख औ' जबड़े हैं
हाथ, चरण, जंगा बहुतेरे
रूप भयानक इतना जिससे
मैं अरु लोक दुखित सब तेरे।

: : 24 : :

दीप्त विशाल नयन, मुख फैला
बहुवर्णी, नभ छूती काया
शम धीरज ना, भयतुर जब से
देखी ये आभा युत माया।

: : 25 : :

विकराली हैं तेरे जबड़े
कालानल बन आनन धधके
मैं दिक–मोही भारी दुख हैं
खुश मुझ पर हो (मन बहु भटके)।

: : 26 : :

तेरे अन्दर जाते गंगज
द्रोण धनुर्धर, राजे, कौरव
कर्ण तथा अपने साथी भी
जाने माने योद्धा यादव!

: : 27 : :

तेरे भीषण जबड़ों वाले –
मुख में सारे भागे आते
कोई तो मरदित सा शिर ले
दांतों में अटके (घबराते)।

: : 28 : :

नदियों की धाराएं जैसे
दौड़ें सागर में मिल जाएं
वैसे ही ये बलशाली नर
भासित मुंहों में अब आएं।

: : 29 : :

मोहित हो ज्वाला में मरने
जैसे भागे जाते झींगुर
वैसे ही ये भागे–भागे
आते तेरे मुंहों अन्दर।

: : 30 : :

ग्रसते चटते सब दिक् से ये
चमकीले निज लपनों[3] द्वारा
तेरी उग्र प्रभा से भासित
झुलसा जाता है जग सारा।

: : 31 : :

रौद्र रूपवर, आद्य देवता
खुश होकर जिज्ञासा हर दो
अज्ञानी हूं नतमस्तक हूं
अपना तात्विक परिचय दे दो।

: : 32 : :

भगवान बोले –

मैं ही सब लोकों का यम हूं
मैं सब का वध करने में रत
ये योद्धा तू ना भी मारे
पर इन सबका मरना निश्चित।

: : 33 : :

उठकर यश लो, वैरी जीतो
धन वैभवयुत भोगो शासन

मैंने तो कब के ये मारे
तुम तो होगे केवल कारण।

: : 34 : :

द्रोण, करण, गंगज औ' जयद्रथ
वीर बहुत हैं मैंने मारे
भय तज, रण लड़, जीतेगा तू
मारो जो मैंने संहारे।

: : 35 : :

संजय बोले –

ये केशव की बातें सुनकर
भय से कांपे अर्जुन डोले
(कर बांधे) नतमस्तक होकर
गद्गद् होकर ऐसा बोले।

: : 36 : :

अर्जुन बोले –

तेरे शुभ कीर्तन के द्वारा
प्रेमी बन हर्षित होते नर
सिद्ध सुनें तो नतमस्तक हों
पर भय कारण भागें आशर।

: : 37 : :

गुरुतम ! क्यों ना नतमस्तक हों
तुम ब्रह्मा के आदिम कारण
असत तथा सत से ऊपर तुम
अन्त रहित, अक्षर तुम पावन !

: : 38 : :

आद्य, सनातन, परम पुरुष तुम
तुम हो परम धाम अवलम्बन
ज्ञेय, परम ज्ञाता, बहुरूपी –
जग परिपूरित तेरे कारण।

:: 39 ::

तुम जल, दमना, मारुत, यम हो
तुम चंदा हो तुम चतुरानन
परम पिता चतुरानन के भी
नमन तुझे शत शत नारायण।

:: 40 ::

सर्वव्यापी सर्वस्वरूपी
अपरम सामर्थी बलशाली।
नमन करूं आगे पीछे से
औ' चारों दिक् से वनमाली[4]।

:: 41 ::

तेरी महिमा से अनजाना
मैं था प्रेमी अनअवधानी[5]
मीत, सखा, यादव, कृष्णा भी
बोला हठपूर्वक अज्ञानी।

:: 42 ::

सोते बैठे खाते हंसते
मित्रों में या आपस में फिर
अपमानित जो कर डाला है
क्षमा करो अच्युत हे गिरधर!

:: 43 ::

जड़ चेतन के पूज्य पिता तुम
तुम शिक्षक अतिपूज्य गुरुवर
अपरम सामर्थी! तुम सा ना
फिर कैसे हो कोई गुरुतर।

:: 44 ::

मीत, पिता, मां, भाई, भर्ता[6]
क्षमा किया करते हैं जैसे
नमन करूं चरणों में पड़कर
देव दया कर दो तुम वैसे।

: : 45 : :

रूप अनुपम जो यह देखा
हर्षित, भयतुर, मन नारायण
खुश हो कर के मेरे पर तुम
दर्शन दो फिर से साधारण।

: : 46 : :

लाखों बाही! विश्वत् रूपी!
चतुर्भुजी फिर से बन जाओ
चक्र, गदा ले कर निज कर में
मुकुट वही फिर से अपनाओ।

: : 47 : :

श्रीकृष्ण बोले –

हर्षित हो यौगिक बल से जो –
आद्य विराट दरस दर्साया
अन्त रहित तेजोमय ऐसा –
कोई ना अब तक कर पाया।

: : 48 : :

कोई वेदों को पढ़ ले या
दान यजन तप कर ले भारी
तेरे बिन ऐसे दर्शन का
कोई ना जग में अधिकारी।

: : 49 : :

भय कारक इस काया कारण
तुझे नहीं होवे व्याकुलता
दुविधा तज, भय तज, खुश रह
फिर पहला दर्शन दर्शाता।

: : 50 : :

संजय बोले –

ऐसा कह केशव ने शीतल
चतुर्भुजी निज रूप बनाया

सौम्य बने तन से अर्जुन का
धीरज दे भय दूर भगाया।

: : 51 : :

अर्जुन बोले –

सौम्य तथा सुन्दर नर रूपी
अब जब फिर से देखी काया
तब से यह मेरा अपना मन
शान्त हुआ अपने में आया।

: : 52 : :

श्रीकृष्ण बोले –

मेरा ऐसा दुर्लभ दर्शन
जो तुम ने देखा है अर्जुन
देवों तक की उत्कंठा है
कर पाएं इस का अवलोकन।

: : 53 : :

मेरा चतुर्भुजी दर्शन यह
पार्थ किया जो तुमने जैसा
वेद पठन, तप, दान, यजन से
दृगगत ना होता है ऐसा।

: : 54 : :

केवल निश्चल भक्ति द्वारा
मेरा ऐसा दर्शन सम्भव
भक्ति से ही तात्विक बनते
औ' मेरे में मिलते मानव।

: : 55 : :

कर्मों को मेरे अर्पण कर
जो निष्कामी मेरे आश्रित

सब भूतों में निरवैरी उन –
भक्तों को मिलता मैं निश्चित।

।। इति एकादश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. नासत्य : अश्विनी कुमार
2 सारस : कमल
3. लपन : मुख
4. वनमाली : श्रीकृष्ण
5. अनअवधानी : प्रमादयुत
6. भर्ता : पति

द्वादश अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

युक्त सदा जो तुझ में या जो
निराकार की पूजा करते
दोनों में से समझाओ तुम
कौन पुरुष उत्तम कहलाते?

: : 2 : :

भगवान बोले –

ध्यान लगा कर श्रद्धापूर्वक
जो नित मेरा पूजन करते
मेरा मत है युक्त पुरुष वे
सब से उत्तम जाने जाते।

: : 3 : :

पर जो पूजें निराकार जो –
भावातीत अटल अक्षर है
अचल अचिन्त्य तथा सर्वग है
ध्रुव अकथ है औ' ईश्वर है।

: : 4 : :

और करण जो अपने वश कर
सब भूतों के हित में रहते
वे सम धी सारे ही मानुष
प्राप्त मुझे कर (सब सुख पाते।)

::5::

पर अव्यक्त–सक्त इन सब का
कठिन बहुत होता मग अर्जुन
इन देहिक का इस कारण से
कष्टों में कटता है जीवन।

::6::

पार्थ! परायण जो मेरे हों
कर्म करें सब मेरे अर्पण
एकनिष्ठ वे मेरे आश्रित
श्रद्धापूर्वक करते चिन्तन –

::7::

ऐसे उन भक्तों को जिनकी
मेरे में होती अनुरक्ति
मार्त जगत से उन भक्तों को
जल्दी मैं देता हूं मुक्ति।

::8::

मन अरु धी ये दोनों भारत
मेरे में तुम कर दो स्थापित
निःसंशित! फिर मेरे अन्दर
वास मिलेगा तुम को निश्चित।

::9::

मेरे में दृढ़ मन लगने की
अगर नहीं दिखती है आशा
यत्न करोगे तो निश्चित है
पूरी होगी यह अभिलाषा।

::10::

अगर नहीं लगता सम्भव है
यूं कोशिश करना भी (किंचित्)
मत्कर्मी बन कर्मों को कर
सिद्धि सुख पाओगे निश्चित।

: : 11 : :

अगर नहीं यह भी सम्भव तो
(जीवन सत कर्मों में डालो)
मन बुद्धि आदिक जीतो औ'
कर्मों के सारे फल त्यागो।

: : 12 : :

ज्ञान श्रेष्ठतर अनुशीलन से
ध्यान ज्ञान से गुरुतर अर्जुन
पर गुरुतम फल तज देना है
जो देता शान्तिक सुख तत्क्षण।

: : 13 : :

अद्वेषी सबके प्रेमी औ'
करुणामय जो निरहंकारी
निर्मम सुख दुख में जो सम हैं
और क्षमा रूपी गुणधारी –

: : 14 : :

दृढ़ निश्चेयी, संयम–युत औ'
तुष्ट रहें जो जग में हर क्षण
मेरे अर्पित मन धी जिनकी
भक्त मुझे प्यारे वे अर्जुन।

: : 15 : :

जो ना खुद को ना औरों को
हे भारत उद्वेगी करते
हर्ष, अमर्ष रहित, अव्याकुल
वे सब मुझको प्यारे लगते।

: : 16 : :

निर–आकांक्षी दक्ष पवित्तर
जो त्यागें सब आरम्भों को
उदासीन जो बिन दुख रहते
प्यार करूं मैं उन भक्तों को।

: : 17 : :

हर्ष रहित जो निश्चिन्तक हैं
द्वेष तजें अरु हर आकांक्षा
सकल शुभाशुभ फल भी त्यागें
उन भक्तों को समझूं अच्छा।

: : 18 : :

जिनको सम आदर अवमानन
जिनको सम शुभचिन्तक वैरी
जिनको सर्दी गर्मी सम है
संग विवर्जित[1] जो नर नारी –

: : 19 : :

चिन्तक, संन्यासी, स्थिर बुद्धि
श्लाघा निन्दा सम, वश वाणी
कुछ मिल जाए तुष्ट उसी में
प्यारे लगते वे अवधानी।[2]

: : 20 : :

जो मत्प्रायण इस अमृत का
सेवन करते नित श्रद्धामय
वे सारे निष्कामी साधक
लगते प्यारे, मुझको अतिशय।

।। इति द्वादश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. विवर्जित : बिना
2. अवधानी : भक्त

त्रयोदश अध्याय

: : 1 : :

श्री भगवान बोले –

तात्विक ज्ञानी पुरुषों द्वारा
क्षेत्र कही जाती है काया
जो इस काया का ज्ञाता है
विज्ञों ने क्षेत्रज्ञ सुझाया।

: : 2 : :

सारे क्षेत्रों में, हे अर्जुन!
'मैं' क्षेत्रज्ञ (जगत का त्राता)
और क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विषय यह
सच्चा ज्ञान अनग, कहलाता।

: : 3 : :

क्षेत्र किसे कहते, क्यों, कैसा?
क्या इसमें होते परिवर्तन?
क्षेत्रज्ञ क्या, कैसी महिमा?
थोड़े में सुन यह सब वर्णन।

: : 4 : :

कितने ही ऋषियों ने इसको
पृथक् पृथक् मंत्रों से गाया
वेदों ने औ' उपवेदों[1] ने
नाना तर्कों से समझाया।

: : 5 : :

अव्यक्त (जिसे कहते माया)
पांचों भूत, अहं, बुद्धि, मन
स्पर्श, शब्द, रस, रूप, गंध, सब–
तन–मात्राएं औ' दश–करणन –

: : 6 : :

द्वेष, धृति, सुख, दुख, इच्छाएं
सारी चेतनता, (भौतिक) तन
क्षेत्र विकारी समुदाय हैं
पर यह संक्षेपित है वर्णन।

: : 7 : :

दम्भ तजन, मानित्व तजन[2] औ'
परम अहिंसा, क्षमा, सरलता
श्रद्धा से गुरुओं की सेवा
संयम, स्थिरता, तन मन शुचिता–

: : 8 : :

करण विषय वैरागी रहना
मद पर पूरा अंकुश रखना
रोग, जरा, दुख जीवन मृत्यु–
दोषों का नित चिन्तन करना –

: : 9 : :

सुत, दारा, घर वैरागी पन
तज देना इन सबमें ममता
वांछित, निरवांछित मिलने पर
मन में रखना सच्ची समता –

: : 10 : :

अव्यभिचारी भक्ति[3] – द्वारा
मेरे में रखना अनुरक्ति
शुद्ध जगह रहना एकान्तिक
जन संसद में निर आसक्ति –

: : 11 : :

नित आध्यात्मिकता का चिन्तन
तात्विक दर्शन में परिस्थापन
ज्ञान कहा जाता है यह सब
शेष सभी कुछ अज्ञानीपन।

: : 12 : :

ज्ञेय सुनो तुम व्याख्यापूर्वक
समझ जिसे मिलता अमृत है
परम अकथ[4] वह ईश अनादि
असत नहीं है ना वह सत है।

: : 13 : :

हाथ, पैर, मुख, कान, नयन, शिर
परमेश्वर के फैले सब दिक्
और वही परमेश्वर जग के
कण कण में नित रहता व्यापक।

: : 14 : :

सकल करण विषयों का ज्ञाता
फिर भी वह बिन करण विधाता
अनासक्त, निर्गुण, जग पालक
वह तीनों गुण भोगी (त्राता।)

: : 15 : :

सूक्ष्मतम अविज्ञेय[5] तथा वह
पास सभी के अन्तर पर भी
सब भूतों के भीतर बाहर
अचर वही है औ' वह चर भी।

: : 16 : :

अविभाजित, खंडित भूतों में –
वह परिस्थापित पृथक् पृथक् है
ज्ञेय वही कारक है जग का
वह पालक है, संहारक है।

: : 17 : :

तेज वही है सब तेजों का
निकट नहीं है उसके माया
ज्ञेय, ज्ञान द्वारा वह सम्भव
सबके हिय जो ईश समाया।

: : 18 : :

क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय तीनों ये
संक्षेपित बतलाया वर्णन
भक्त पुरुष जब ये सब समझें
तब मेरे वे करते दर्शन।

: : 19 : :

त्रिगुण–मयी माया, जीवात्मा
तत्व अनादि दोनों अर्जुन
सकल विकार[6] तथा तीनों गुण
उदय हुए हैं माया कारण।

: : 20 : :

कार्य[7], करण इन दोनों का ही
प्रकृति कही जाती है कारण
और पुरुष के हित में होता
हे अर्जुन ! सुख दुख संचालन।

: : 21 : :

प्रकृति–स्थित पुरुष करता है
इससे उत्पादित गुण सेवन
ये गुण संगत ही मरने पर
करती पुनर्जन्म निर्धारण।

: : 22 : :

काया में स्थित पुरुष 'परम' है
यह साक्षी, शुभमत देता है
भर्ता, भोक्ता, स्वामी सब का
यह परमेश्वर कहलाता है।

: : 23 : :

प्रकृति, पुरुष, गुण तीनों का
जो भी होता तात्विक ज्ञाता
वह सब कर्मों को करके भी
जीने मरने से छुट जाता।

: : 24 : :

ध्यान लगाकर कुछ नर हिय में
परमात्मा का देखें वैभव
ज्ञान तथा कर्मों द्वारा कुछ
उस सत्ता का करते अनुभव।

: : 25 : :

पर कुछ कम ज्ञानी सुन सुन कर
परमेश्वर का करते पूजन
श्रुतियों के अनुगामी वे भी
भव सागर तर जाते सज्जन।

: : 26 : :

स्थावर अरु जंगम हर वस्तु
जिस जिस में होता है जीवन
क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ मिलन ही
उन सबके जीवन का कारण।

: : 27 :

सब जीवन नश्वर हैं उनमें
रहता अविनाशी परमात्मा
जिसने यह अव्यय यूं समझा
वह ज्ञानी होता धर्मात्मा।

: : 28 : :

जो समझे सारे भूतों में
समनिष्ठित रहते जगदीश्वर
जो ना नष्ट करे निज (आत्मा)
वह उत्तम गत पाए मर कर।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 29 : :

प्रकृति किया करती कर्मों को
अरु आत्मा रहता अकर्ता
जिसने भी ऐसा समझा है
वह तात्विक ज्ञानी कहलाता।

: : 30 : :

सब सत्ताएं ईश्वर निष्ठित
औ' विस्तारित उसके कारण
जो मानव यूं समझे वे सब –
प्राप्त किया करते नारायण।

: : 31 : :

निर्गुण और अनादि अव्यव
परमेश्वर हर तन में स्थापित
पर फिर भी वह अकर्ता है
ना बन्धन में होता बन्धित।

: : 32 : :

सर्वत फैला है नभ सूक्ष्म
पर निर्लेपी रहता जैसे
पूरे तन में फैला आत्मा
निर्लेपी रहता है वैसे।

: : 33 : :

एक अरुण सारे ही जग को
भासित कर देता है जैसे
सारी ही काया को क्षेत्री
भासित करके रखता वैसे।

: : 33 : :

जिसने समझा क्या है मुक्ति
क्षेत्र तथा क्षेत्री का अन्तर

ऐसे सम्यक् ज्ञानी मानुष
पावें परम – ब्रह्म – परमेश्वर।

।। इति त्रयोदश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. उपवेद : ब्रह्मसूत्र
2. मानित्य तजन : अभिमान का त्याग
3. अव्यभिचारी भक्ति : अनन्य भक्ति
4. अकथ : अकथनीय
5 अविज्ञेय : जो जाना नहीं जा सकता
6. सकल विकार : राग–द्वेष आदि सब विकार
7. आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, आदि कार्य कहलाते हैं।

चतुर्दश अध्याय

: : 1 : :

श्रीकृष्ण बोले –

सब ज्ञानों में जो उत्तम है
समझाता हूं फिर वह अर्जुन
जिसका पूरा अनुभव करके
सिद्धिः सुख पाते तापस जन।

: : 2 : :

जो ऐसे ज्ञानी बन करके
मेरे गुण करते हैं धारण
प्रलय समय वे अव्याकुल हों
सर्ग समय ना पाएं जीवन।

: : 3 : :

महद्–ब्रह्म मेरा गर्भाशय
बीज करूं मैं इस में स्थापन
फिर इन दोनों के द्वारा मैं
सारा जग करता हूं धारण।

: : 4 : :

सब जीवित रूपों में जो जो
प्राणी काया करते धारण
महद्–ब्रह्म[1] उनका गर्भाशय
और पिता मैं बीजक कारण।

::5::

माया द्वारा पैदा होकर
सत्व, रजो अरु तम तीनों गुण
अविनाशी अव्यय आत्मा को
काया रूपी देते बन्धन।

::6::

जीवन को भासित करता है
निर्दोषी औ' निर्मल सत्गुण
ज्ञान तथा सुख में मोहित कर
प्राणी के बन्धन का कारण।

::7::

रागात्मक रजगुण को पैदा–
करती तृष्णाएं, आसक्ति
और इसी कारण मानव को
कर्मों में रहती अनुरक्ति।

::8::

अज्ञानीपन तम जनता है
हर प्राणी को करता मोहित
नींद–प्रमाद तथा आलस से
सब जीवों को रखता बन्धित।

::9::

सत्व लगा रखता है सुख में
कर्मों को करवाता रज गुण
ज्ञान रहे आच्छादित तम से
और प्रमादित करता तम मन।

::10::

रज गुण, सत गुण दबने पर तम
तम, सत दबने पर रज उभरे
रज अरु तम गुण दब जाएं तो
सात्विक्ता जीवन में मुखरे।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

: : 11 : :

जब दैहिक सब द्वारों द्वारा
निर्मल बौद्धिकता हो उद्‌भव
यह समझो सत गुण बढ़ने से
ऐसा हो पाया है सम्भव।

: : 12 : :

रज बढ़ने से लोभी हों नर
कर्मों की चेष्टाएं जागें
मन चंचल हो इस कारण वे
भोगों विषयों में अनुरागें।

: : 13 : :

तम गुण बढ़ने पर जीवन में
छा जाती गहरी अंधियारी
लापरवाही, निष्क्रियता औ'
मोहित भी होते नर – नारी।

: : 14 : :

सत्व गुणों की बहुतायत में
जो जीवात्मा जग से जाते
वह उत्तम कर्मी जीवात्मा
निर्मल लोकों में सुख पाते।

: : 15 : :

कर्मों के अनुरागी के घर
रज गुण युत मरने पर आते
और तमोगुण–धारी तन तज
मूढ़ योनियों में अकुलाते।

: : 16 : :

ज्ञान हरण करते तामस गुण
राजस कर्मों से मिलता दुख
पर सात्विक निर्मल कर्मों से
मिलता है सात्विक निर्मल सुख।

: : 17 : :

ज्ञान उदय करते हैं सतगुण
और रजो गुण केवल लोभ
तम गुण के कारण मिलता है
मोह, प्रमाद, अविद्या, (क्षोभ।)

: : 18 : :

सात्विक जन ऊपर उठते हैं
मध्य स्थित रहते हैं राजस
अघ नरकों को जाते हैं जो –
नीच तमोगुण धारी तामस।

: : 19 : :

जब नर निर्गुण ईश्वर समझे
और समझ ले कर्ता हैं गुण
केवल तब ही कोई द्रष्टा
आ मिलता मेरे में सज्जन।

: : 20 : :

काया का कारण तीनों गुण
जो इन से ऊपर उठ पाता
जन्म, जरा औ' मरण व्यथा से –
छुटकर आनन्दित हो जाता।

: : 21 : :

अर्जुन ने पूछा –

त्रिगुणातीत पुरुष की होती –
कैसी दिनचर्या अरु लक्षण?
औ' इन तीनों से छुटने के
योगी क्या क्या करते साधन ?

: : 22 : :

भगवान बोले –

ज्योतित हों कर कारज रत नर
जो ना होते हैं मोहित चित

द्वेष नहीं रहता उनमें कुछ
और न रहती इच्छा किंचित्।

: : 23 : :

जो साक्षी सम बन कर रहता
जिसको विचलित करते ना गुण
जो माने गुण करते कारज
(जो हैं स्थिर अविकारी सज्जन।)

: : 24 : :

सुख दुख माटी सोना सम हो
सम हों फल इच्छित अनिच्छित
निन्दा कीर्तन कुछ मिल जाए
जो है धीरज धारी समुचित –

: : 25 : :

मान अनादर सम है जिसको
जिस को सम वैरी शुभचिन्तक
'मैं कर्ता हूं।' जो यह त्यागे
त्रिगुणातीत–पुरुष वह सम्यक्।

: : 26 : :

अव्यभिचारी भक्ति द्वारा
जो करते हैं मेरा पूजन
त्रिगुणातीत हुए वे मानव
ब्रह्मनिष्ठ हो जाएं सज्जन।

: : 27 : :

मेरे आश्रय अव्यय ब्रह्म
धर्म नियम (जिनसे जग ज्योतित)
अमृत अरु एकांतिक[2] सुख भी
हे भारत मेरे ही आश्रित।

।। इति चतुर्दश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. महद् ब्रह्म : प्रकृति
2. एकांतिक सुख

पंचदश अध्याय

: : 1 : :

ऊपर जड़ नीचे शाखाएं
वेद वचन जिसके हैं पत्ते
जो यह अव्यय पीपल जानें
वै वैदिक ज्ञानी हैं सच्चे।

: : 2 : :

गुध सिंचित, विषयों के कोंपल
शाखें अध[1], ऊपर फैलाईं
कर्म बधित हो मूल जगत् में
ऊपर नीचे फैली आईं।

: : 3 : :

आद्य अन्त बिन जो ना स्थापित
ऐसा बट ना दृष्टिगोचर
इसकी जड़ गहरी है तुम यह
वैरागिक शस्त्रों से कट कर –

: : 4 : :

निश्चयपूर्वक वह पद खोजो
प्रतन[2] जगत फैला जिस कारण
जीना मरना छुट जाएगा
जब पा लोगे वह पद पावन।

: : 5 : :

जो नर निष्कामी, निर्मोही
अनासक्त औ' निर–अभिमानी
आध्यात्मिक बन सुख-दुख तज कर
अव्यय पद पाएं वे ज्ञानी।

: : 6 : :

इस पद को भासित ना करते
सूरज, चंदा या वैश्वानर
परमधाम यह मेरा पद पा
फिर ना लौटे कोई भी नर।

: : 7 : :

मेरा ही अंशी आत्मा है
जो काया में आकर रहता
माया स्थित छेहों, मन[3] करणन
यह आकर्षित करके रखता।

: : 8 : :

गंध जहां होती है उसको
पव जैसे लेकर उड़ जाता
वैसे – आत्मा जब तन छोड़े
छेहों ले नव तन में आता।

: : 9 : :

असृगधारा[4], जीभा, घोणा[5]
कान नयन मन द्वारा समुचित
सारे ही भौतिक विषयों का
वह आत्मा सेवन करता नित।

: : 10 : :

आत्मा तन में आए जाए
गुण युत, विषय करें जब सेवन
अज्ञानी ना समझें इसको
ज्ञानी ही समझें कुरुनंदन।

: : 11 : :

यत्न करें तो साधक पाएं
निज हिय में आत्मा के दर्शन
पर मेहनत कर भी ना पाएं
जो अकृत[6] हैं अज्ञानी जन।

: : 12 : :

तेज अरुण का मेरे कारण
जिससे वह करता जग भासित
शशधर[7], सुषमा[8] का तेजस् भी
मेरे ही कारण आलोकित।

: : 13 : :

धरती में आ निज बल द्वारा
मैं भूतों को करता धारण
अमृतमय शशधर बन करता
ओषधियों का पालन पोषण।

: : 14 : :

सब जीवों की काया अंदर
मैं रहता बनकर वैश्वानर
चारों भोजन पाचन करता
प्राण अपान पवन मैं बनकर।

: : 15 : :

ज्ञान अवर सुध सबको दे कर
सब हिय बैठ अपोहन[9] करता
वेद मुझे सब इंगित करते
मैं वेदों का करता, ज्ञाता।

: : 16 : :

क्षर अरु अक्षर दोनों द्वारा
पार्थ बना यह जगत् चराचर
सब भूतों की काया क्षर है
जीवात्मा कहलाता अक्षर।

:: 17 ::

पर इन दोनों से उत्तम है
अन्य पुरुष ईश्वर अविनाशी
वह धारक पोषक है सब का
वह तीनों लोकों का वासी।

:: 18 ::

क्षर अरु अक्षर दोनों से ही
मैं उत्तम हूं ईश्वर त्राता
सब वेदों में, सब लोकों में
मैं पुरुषोत्तम जाना जाता।

:: 19 ::

जो तात्विक ज्ञानी यह समझें
मैं ही पुरुषोत्तम नारायण
वे ही सर्वज्ञी करते हैं
सब विध मेरा पूजन गायन।

:: 20 ::

ज्ञान गहनतम अब तक जो भी
तुझे किया है पार्थ पुरस्कृत
ज्ञानी जन जब भी यह समझें
वे हो जाते निश्चय कृत कृत।

।। इति पंचदश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. अध : नीचे
2. प्रतन : पुराना: अखंड सुख
3. मन : मन शब्द यहां अन्तःकरण वाचक है और इसमें बुद्धि का समावेश है।
4. असृग्धारा : चमड़ी
5. घोणा : नाक
6. अकृत : अशुद्ध
7. शशधर : चन्द्रमा
8. सुषमा : अग्नि
9. अपोहन : विचार के द्वारा बुद्धि में रहने वाले दोशों को हटाने का नाम

षोडश अध्याय

: : 1 : :

श्री भगवान बोले –

निर्भय, ज्ञान–व्यवस्थित[1] दानी
साफ सरल मन, वश में करणन
याज्ञिक, पाठ पठन जो करते
अरु करते जो तप का पालन –

: : 2 : :

त्यागी, अक्रोधी, लज्जीले
अनासक्त, सच्चे अनुकम्पक
चपल विहीन, अहिंसक, कोमल
शान्त, हया युत औ' अनिंदक –

: : 3 : :

तेज, क्षमा, धीरज, शुचिता युत
निर–अभिमानी, अद्रोही जन
जो योगी ऐसे होते हैं
वे दैविक गुणधारी सज्जन।

: : 4 : :

पर जिनके लक्षण आसुर के –
वे क्रोधी, दम्भी, अभिमानी
स्वाभाविक वे कड़वा बोलें
या होते दर्पक अज्ञानी।

::5::

दैवी सम्पद देती मुक्ति
पर असुराई बांधे बंधन
तू सारी चिन्ताएं तज दे
अर्जुन! तेरे दैवी लक्षण।

::6::

भूत सकल द्वै गुणयुत जग में
दैवी औ' कुछ में आसुर गुण
बहुत कहा है दैवी हित अब
सुन जो आसुर गुण युत दुर्जन।

::7::

क्या करना है, क्या ना करना
इसको ना जानें आसुर जन
झूठे, व्यभिचारी होते वे
ना पावन हों उनके तन मन।

::8::

वे बतलाते जग मिथ्या है
बिन आश्रय के औ' बिन भगवन्
संयोजन द्वारा बनता है
भोग निमित्त है यह इस कारण।

::9::

दुष्स्वभावी मिथ्या ज्ञानी
उनके मैले मेधा अरु मन
क्रूर अहितकर जगनाशन हित
जग में वे पाते हैं जीवन।

::10::

दम्भी, मदमोही अभिमानी
दुष्पूरित इच्छाओं आश्रित
मूढ़, असद सिद्धान्तों के हित
कलुषित कर्मों में रहते रत।

: : 11 : :

वे मानव मरने तक अतिशय
चिन्ताओं में रहते प्रतिपल
वे सच्चा सुख ढूंढ़ा करते
विषयों अरु भोगों में केवल।

: : 12 : :

कामी औ' क्रोधी वे मानुष
भोगों में लिप्सा के कारण
लाखों आशाएं ले करके
अन्याय पूर्वक जोड़ें धन।

: : 13 : :

वे सोचें अब यह पाया है
कल होगा यह निश्चित संभव
अब तक पाई इतनी माया
कल आएगा इतना वैभव।

: : 14 : :

वह दुश्मन तो अब मारा है
वह अतिघातक[2] मारूंगा कल
मैं ईश्वर हूं मैं सुख भोगी
सिद्ध पुरुष मैं मुझ में बहुबल।

: : 15 : :

मैं उत्तम कुल का धनधारी
मेरे सम ना कोई भी नर
दान–यजन कर सुख भोगूंगा
वे सोचें अज्ञानी बनकर।

: : 16 : :

कोरी कल्पित बातों में ही
अज्ञानी मोहित हो जाते
विषयों भोगों में लिपटे वे
कलुषित नरकों में अकुलाते।

:: 17 ::

आत्मश्लाघी, दम्भी वे नर
मदमत हों, पाकर धन इज़्ज़त
वैदिक मग तज, पाखंडी बन
नाम यजन[3] करते संचालन।

:: 18 ::

हंकारी, बल, इच्छाओं वश
वे होते हैं दर्पक निंदक
क्रोध तथा द्वेषण वे करते –
मुझसे जो, सब में स्थित सम्यक्।

:: 19 ::

क्रूर, नराधम द्वेषी ऐसे
जितने भी होते पापी जन
असुर योनियों में फिर उनको
पाप सना मैं देता जीवन।

:: 20 ::

कितने जन्मों तक यूं मूरख
ना पा करके मेरे दर्शन
असुर योनियों से भी नीचे
घोर नरक में पड़ते दुर्जन।

:: 21 ::

काम, क्रोध अरु लालच करना
नरक पुरी के तीनों तोरण
ये आत्मा को अवनत करते
त्यागो तुम इनको इस कारण।

:: 22 ::

जो इन तम रूपी द्वारों से
हट कर उत्तम कारज करते
उन लोगों को इसके कारण
परम धाम परमेश्वर मिलते।

: : 23 : :

जो शास्त्रों के नियमों को तज
चलते हैं निज इच्छाओं पर
उनको सुख सिद्धि ना मिलती
ना उत्तम गत रूपी ईश्वर।

: : 24 : :

करने या ना कुछ करने हित
शास्त्र वचन होते निर्णायक
शास्त्रोचित अब यह समझो औ'–
कर्म करो तुम सारे सम्यक्।

।। इति षोडश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. ज्ञान व्यवस्थित : तत्व ज्ञान में स्थित
2. अतिघातक : शत्रु
3. नाम यजन : नाम के नमित यज्ञ

सप्तदश अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

शास्त्र नियम तज श्रद्धापूर्वक
जो करते यज्ञों का पालन
सात्विक, राजस, तामस में से
कैसी उनकी श्रद्धा भगवन?

: : 2 : :

भगवान बोले –

उस श्रद्धा के हित में सुन जो
स्वभावज कर्मों पर निर्भर
सात्विक, राजस, तामस क्या है?
वर्णन करता हूं व्याख्या कर।

: : 3 : :

हर मानव में श्रद्धा होती
पर वह होती मन हो जैसा
जिस मानव में जैसी श्रद्धा
वह मानव होता है वैसा।

: : 4 : :

सात्विक नर देवों को पूजें
राक्षस[1] अरु यक्षों[2] को राजस
पर भूतों प्रेतों[3] आदिक का
आराधन करते हैं तामस।

::5::

शास्त्रों का दर्शाया मग तज
जो करते हैं तप अतिभारी
वे दम्भी, हंकारी कामी
अभिमानी हों और विकारी।

::6::

वे दुख दें तनस्थित भूतों[4] को
औ' अंतरस्थित मुझको निशिदिन
यह निश्चित है वे अज्ञानी
आसुर समझे जाते (दुर्जन)।

::7::

खाद्य, यजन, तप दान क्रियाएं
तीन तरह की प्यारी भारत !
जो तीनों के भेदक गुण हैं
उन पर सुन अब तू मेरा मत।

::8::

सात्विक नर खाते सुस्वादु
चिकना रसयुत सुस्थिर भोजन
जो दे बुद्धी, बल, सुख, प्रीति
और निरोगी लम्बा जीवन।

::9::

राजस नर भोजन करते हैं
गर्म बहुत ही, तीखा, दाहक
कड़वा, खट्टा, खारा या जो
दुख, चिन्ता, रोगों का कारक।

::10::

पर जो मानुष तामस उनको
अच्छा लगता ऐसा भोजन
जो दूषित, अधकच्चा, बासा
नीरस, दुर्गन्धित या जूठन।

:: 11 ::

शास्त्रोचित औ' निश्चय पूर्वक
फर्ज समझ जो बनते याज्ञिक
फल त्यागी ऐसे लोगों के
यज्ञ कहे जाते हैं सात्विक।

:: 12 ::

दम्भ नमित या फल इच्छा हित
जिन यज्ञों को मानव करते
उनके उन सारे यज्ञों को
ज्ञानी जन राजस हैं कहते।

:: 13 ::

वैदिक मग तज, अन्न–दिए बिन
मंत्र, दक्षिणा अरु श्रद्धा बिन
यज्ञ किए जाते जितने हैं
वे होते हैं तामस अर्जुन!

:: 14 ::

कायिक तप है ब्रह्मचर्यता
शोच, सरलता, परम अहिंसा
देव, ऋषि, ब्राह्मण ज्ञानी जन–
औ' गुरु पूजन में सक्रियता।

:: 15 ::

सुनने वाले व्याकुल ना हों
सच्चा, पुष्पित, हितकर भाषण
वेदों को पढ़ना ईश्वर जप
ये सब वाणी रूपी तप धन।

:: 16 ::

मन संयित अरु हर्षित रखना
शान्त बने रहकर ईश्वर जप
अन्तरमन को पावन रखना
मन सम्बन्धी कहलाते तप।

:: 17 ::

जो निष्कामी श्रद्धापूर्वक
करते ये त्रैविध तप हर पल
उनके ऐसे ये तीनों तप
कहलाते हैं सात्विक, निश्छल !

:: 18 ::

मान नमित पूजा आदर या–
जिस जिस तप का कारण बड़पन
अस्थिर चंचल ये सारे तप
कहलाते राजस इस कारण।

:: 19 ::

जो तप मूरखता से होते
या जो करते पीड़ित तन मन
जो औरों के हित अपकारी
उन सब तप का तामस वर्णन।

:: 20 ::

प्रत्युपकारी भावों को तज
दान नमित जो देता सम्यक्
देश समय गुण से मर्यादित
वह देना होता है सात्विक।

:: 21 ::

प्रतिकारों हित या फिर फल हित
या जो दुखदायक है देना
वह देना राजस होता है
(शास्त्रों द्वारा ऐसा कहना)।

:: 22 ::

दान बने तामस वह जब जब
स्थान समय का ना चिन्तन हो
जब यह पात्रों तक ना जाए
आदर ना दे अवमानन हो।

:: 23 ::

ऊँ[5] तथा तत्, सत त्रैविध से
नारायण होते सम्बोधित
ब्राह्मण[6] यज्ञों औ' वेदों को
पुरा काल वह करते निर्मित।

:: 24 ::

इस कारण वैदिक ज्ञाता जब
ज्ञान, यजन या करते हैं जप
कुछ भी करने से पहले वे
ऊँ (परम ईश्वर) जपते जप।

:: 25 ::

उच्चारण कर 'तत' सब उसका
तज कर फल रूपी इच्छाएं
मोह आकांक्षी नर करते हैं
दान, यजन, तप सकल क्रियाएं।

:: 26 ::

सत्य तथा उत्तम भावों को
'सत' बतलाते हैं ज्ञानी जन
वैसे ही उत्तम कर्मों को
वे 'सत' से करते सम्बोधन।

:: 27 ::

दान, यजन, तप में सुस्थिरता
यह भी 'सत' से हो सम्बोधित
सत उन कर्मों को भी कहते
जो होते परमेश्वर के हित।

:: 28 ::

बिन श्रद्धा के दान यजन तप
या जो भी कारज होते हैं

पार्थ ! असत इस जीवन में वे
औ' मरने पर दुख देते हैं।

।। इति सप्तदश अध्याय ।।

संदर्भ :

1. राक्षस : शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक है।
2. यक्ष : धन ऐश्वर्य का प्रतीक है।
3. भूत–प्रेत : दुराचारी शक्ति का प्रतीक है।
4. भूतों को : पंचभूत
5. ऊँ : ऐसा आत्मतत्त्व जो अजन्मा, अविनाशी, सर्व उपाधियों से परे शरीर आदि में रहता है।
6. ब्राह्मण : ब्राह्मण ग्रन्थ

अष्टादश अध्याय

: : 1 : :

अर्जुन बोले –

हे बलशाली ! अन्तर्यामी
हे मधुसूदन ! हे अरिसूदन !
संन्यास तथा त्याग पृथक् से
व्याख्या कर समझाओ साधन।

: : 2 : :

भगवान बोले –

कामी कर्मों का अपवर्जन[1]
संन्यास कहें परिज्ञाता जन
पर, त्याग कहें कुछ पंडित जन
सब कर्मों के फल उत्सर्जन[2]।

: : 3 : :

कर्मों को करना दोषी कह
कुछ ज्ञानी कहते यह छोड़ो
पर दान, यजन, तप करने से
कुछ कहते हैं ना मुख मोड़ो।

: : 4 : :

सात्विक, राजस, तामस त्रैविध
त्याग किए जाते परिभाषित
हे भारत सुन इन त्यागों पर
मेरा कैसा निश्चित है मत।

:: 5 ::

तुम दान, यजन, तप ना छोड़ो
ये तो करने हैं नरभूषण
इन तीनों के अनुशीलन से
ज्ञानी भी बन जाते पावन।

:: 6 ::

आसक्ति बिना फल तज ये औ'
सारे कर्मों को कर समुचित
ऐसा करना ही अच्छा है
यह मेरा निश्चित अन्तिम मत।

:: 7 ::

अपने निर्धारित कर्मों का
त्यागन कहलाता है अनुचित
मोहित होकर ऐसा करना
तामस है इस कारण कुत्सित।

:: 8 ::

कर्मों का करना दुखकारक
इस भय से जो त्यागें इनको
ऐसा यह करना राजस है
इस का ना फल मिलता उनको।

:: 9 ::

आसक्ति तज, फल इच्छा तज
निर्धारित कर्मों का पालन–
यह त्यागन सात्विक कहलाता
शास्त्रों की है यह अवधारण।

:: 10 ::

अपकारी से अद्वेशी औ'
शस्तिक[3] कर्मों से वैरागी
वे सात्विक नर निःसंशित ही –
ज्ञानी हो अरु होते त्यागी।

: : 11 : :

देही द्वारा सब कर्मों का
तज देना ना पूरा सम्भव
पर कर्मों का फल जो त्यागें
वे कहलाते त्यागी मानव।

: : 12 : :

हित, अनहित, मिश्रित त्रैविध फल
मरकर पावें अत्यागीजन
पर जो सच्चे त्यागी होते –
छुट जाते उनसे फलबंधन।

: : 13 : :

सांख्य सकल कर्मों के हित में
पांच सदा बतलाता कारण
ये पांचों कारण तुम समझो
इस कारण करता हूं वर्णन।

: : 14 : :

काया, कर्ता, विविध कर्ण औ'
विविध विविध चेष्टाएं[4] भगवन
इन पांचों के द्वारा होता
सारे कर्मों का संचालन।

: : 15 : :

वाणी या तन या मन द्वारा
जिन कर्मों का हो परिचालन
न्यायिक, अन्यायिक इन सबके –
ये पांचों होते हैं कारण।

: : 16 : :

पर जो ऐसा होने पर भी
अपने को कर्ता दर्शाए
वह अनुचित चिन्तक है उसकी –
बुद्धी भी मैली कहलाए।

: : 17 : :

मोह रहित जिसकी बुद्धी है
जो यह सोचे मैं ना कर्ता
वह सारे जग का हंता भी
बन्धन में ना किंचित् पड़ता।

: : 18 : :

ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता[5] त्रिपुटी[6]
कर्मों का करती उत्साहन
कर्ता, करण, क्रिया तीनों से
कर्मों का होता निष्पादन।

: : 19 : :

ज्ञान, कर्म, कर्ता तीनों का
सांख्य करे गुण रूपी वर्णन
पर गुण भी त्रिविधा रूपी हैं
सुन त्रिविधा तीनों के लक्षण।

: : 20 : :

नाना भूतों में जगदीश्वर –
अव्यय अविभाजित सुस्थापित
जो यह ज्ञान सुनिश्चित करता
वह निश्चित सात्विक परिभाषित।

: : 21 : :

सब भूतों में सब भावों[7] को
जो न्यारा न्यारा दर्शाता
ऐसा ज्ञान सभी शास्त्रों में
राजस गुणधारी कहलाता।

: : 22 : :

अपनी काया में ही केवल
जिस कारण नर लेता है रस
तत्व रहित, जो अल्प, अहैतुक[8]
ज्ञान कहा जाता वह तामस।

::23::

राग, द्वेष तज, फल इच्छा तज
तज कर कर्मों का कर्तापन
शास्त्रोचित कर्मों का करना
सात्विक कहते हैं ज्ञानीजन।

::24::

फल हित औ' अभिमान सहित जो–
जो कारज करते निष्पादन
उनके ऐसे हर कारज के
केवल होते हैं राजस गुण।

::25::

तामस उन कर्मों को कहते
जो होते मोहित चित होकर
चारों फल, बल, हिंसा, हानि
ये सबके सब अनदेखा कर।

::26::

अन–अवलेपित,[9] बिन आसक्ति
उत्साही औ' धीरज धारी
सिद्धिः अवर अननिसिद्धिः में सम–
कर्ता हों सात्विक अविकारी।

::27::

रागी, लोभी, फल आकांक्षी
हिंसक, अविकारी जो रहते
हर्ष अमर्ष–लिपायित, दूषित
वे कर्ता हैं राजस होते।

::28::

नैष्कृतिक,[10] शोकातुर जो हैं
जिनको सब कर्मों में आलस
बहिमुख, वंचक,[11] दर्पक,[12] कामी
मंद पुरुष वे कर्ता तामस।

: : 29 : :

बुद्धी औ' निश्चय दोनों भी
निज गुण कारण होते त्रिविधा
दोनों के बतलाता हूं अब
पूरे ही लक्षण मैं विविधा।

: : 30 : :

प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य
भय निर्भय मुक्ति अरु बंधन
जो बुद्धी यह समझाती है
वह बुद्धी है सात्विक पावन।

: : 31 : :

धर्म, अधर्म, कार्य, अकार्य
भेद नहीं जो धी समझाए
ऐसी बुद्धी शास्त्रों द्वारा
हे अर्जुन ! राजस कहलाए।

: : 32 : :

तम लिपटी धी, दुष्कर्मों को
धार्मिक बतलाकर सत्कारे
और धरम की बातों के वह
अर्थ बताए उलटे सारे।

: : 33 : :

प्राण, करण अरु मन तीनों ये
जिस धृति कारण होवें नियमित
योग–परिष्कृत धारण शक्ति –
वह अविचल सत्विक प्रतिपादन।

: : 34 : :

जिस धृति कारण इच्छाओं से
धर्म, विभव से होवे प्रीति
फल आकांक्षी मानव की वह
राजस होती धारण शक्ति।

: : 35 : :

भय, दुख, मद, निद्रा, चिन्ता हो
जिस धारण शक्ति के कारण
दुर्जन की वह धारण शक्ति
शास्त्रों द्वारा तामस अंकन।

: : 36 : :

जिस सुख का करके अनुशीलन
दुख से मिल जाता छुटकारा
तीन तरह के वे सुख होते
ये सब समझो मेरे द्वारा।

: : 37 : :

पहिले तो जो विष सम लगते
पर फिर बन जाते हैं अमृत
निर्मल धी द्वारा जो आएं
वे सुख होते सात्विक औ' नित।

: : 38 : :

करण विषय सम्बन्धित सब सुख
भोग समय जो लगते प्यारे
पर जो आखिर में दुखकारी
वे सुख होते राजस सारे।

: : 39 : :

भोग समय या भोग अनन्तर
जो सुख करते मोहित अंतस्
भरम, अलस, निद्रा से उपजे
वे सुख होते भारत! तामस।

: : 40 : :

धरती, अम्बर औ' सुरपुर में
ऐसा जीवन ना है सम्भव
जो तीनों प्राकृतिक गुणों से
मुक्त कभी रहता है पाण्डव।

:: 41 ::

द्विज, क्षत्री, वैश्यों, शूद्रों के
पृथक् पृथक् गुण हैं निर्धारित
पूर्वज कृत कर्मों के कारण
ये मानव में हों उद्भासित।

:: 42 ::

ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हैं
शम, दम, शुचिता, क्षमा, सरलता
ज्ञान तथा विज्ञान समझना
तापस बन जीना आस्तिकता।

:: 43 ::

क्षत्री पुरुषों के गुण साहस–
तेज, चतुरता, धीरज–युत मन
रण में से ना पीछे हटना
दानी बन कर करना शासन।

:: 44 ::

वैश्य पुरुष व्योपारी होते
या कर्षक या वे गौपालक
पर सबकी सेवा ही करना
शूद्रों के कारज स्वाभाविक।

:: 45 ::

सिद्धिः उन पुरुषों को मिलती
जो अपने कर्मों में अभिरत
पर यह कैसे होवे सम्भव
अब सुन तू जो मेरी सम्मत।

:: 46 ::

जिस ईश्वर से जग विस्तारित
जो सब भूतों का है कारण
उसका कर्मों से पूजन कर
सिद्धिः पा लेते योगी जन।

: : 47 : :

सद्–आचारित पर धर्मों से
अपना मग ही अच्छा गुण बिन
स्वाभाविक कर्मों का करना
पापों का ना बनता कारण।

: : 48 : :

निज कारज दोषी भी हों तो
फिर भी वे ना छोड़ो अर्जुन
जैसे वैश्वानर में धूआं –
वैसे सब कर्मों में अवगुण।

: : 49 : :

तज कर इच्छाएं आसक्ति
जो अपना मन जीता करते
वे संन्यास शरण में होकर
नैष्कर्म सिद्धिः को पाते।

: : 50 : :

सिद्धिः पाकर मानुष कैसे
पाया करंते हैं नारायण
तत्वज्ञान–परा निष्ठा वह
हे अर्जुन सुन सब संक्षेपन।

: : 51 : :

निर्मल प्रज्ञा, दृढ़ निश्चेयी
शब्दादिक जो करता नियमन
राग रहित, विद्वेष रहित वह
जो अन्तर तम रखता पावन –

: : 52 : :

एकान्ती औ' मित भोजी जो –
तन मन वाणी वश में रखता
ध्यानमग्न होकर जो योगी
वैरागी बनकर के रहता –

: : 53 : :

जो बल बंधन, काम त्याग कर
क्रोध, अहं, संग्रहण छोड़े
ममता त्यागी शान्त पुरुष वह
परमेश्वर से नाता जोड़े।

: : 54 : :

निर्आकाक्षी, ईश्वर निष्ठित
शोक रहित रहता आनन्दित
वह भूतों में समदर्शी हो—
परम भक्ति पाकर हो मंडित।

: : 55 : :

इस भक्ताई द्वारा योगी
रूप समझता मेरा तात्विक
निश्चयपूर्वक मेरे अन्दर
वह मानुष मिलता तत्कालिक।

: : 56 : :

जो मेरे आश्रित हो करते
सारे कारज निष्कामी बन
वे मेरी करुणा से पाएं
शाश्वत अव्यय पद रूपी धन।

: : 57 : :

अपने मन से सब कर्मों को
मेरे अर्पण तुम कर डालो
मत्प्रायण हो बुद्धी आश्रित
मन मेरे में पार्थ लगा लो।

: : 58 : :

मत्प्रायण, फिर मेरे द्वारा
सब कष्टों से छुट जाओगे
पर मदकारण ना मानो तो
निश्चित ही तुम मिट जाओगे।

:: 59 ::

अहं–वशी मिथ्या कहते हो
तुम रण में ना पार्थ लड़ोगे
तुम क्षत्री हो खुद ही उठ कर
इस रण में अब कूद पड़ोगे।

:: 60 ::

मोहवशी हो जिन कर्मों को
पार्थ नहीं तेरी इच्छा अब
कर्मवशी हो स्वाभाविक ही
वे तुझ को करने होंगे सब।

:: 61 ::

हर प्राणी के हिय में बैठा
जो है परम विधाता ईश्वर
गतिक करे वह सबको ऐसे
मानो बैठे हों यंत्रों पर।

:: 62 ::

सब भावों से अपनापन तज
परमेश्वर को कर दो अर्पण
तब उत्तम शान्तिक सुख होगा
ईश्वर की करुणा के कारण।

:: 63 ::

परम गहन उत्तम व्याख्या कर
रहस्य तुझे सारे बतलाए।
सोच समझ कर इच्छा पूर्वक
कर अब जो तेरे मन आए।

:: 64 ::

परम गहन ये उत्तम बातें
फिर से करता हूं आलोड़न[13]
तू बहु प्यारा, तेरे हित फिर
हितकर वचन करूंगा वर्णन।

: : 65 : :

भक्ति, भजन, पूजा अरु चिन्तन
हे अर्जुन केवल मेरा कर
परम सखे वादा करता हू
पा लेगा तू फिर मेरा दर।

: : 66 : :

चिन्ता तज, सब धर्मों[14] को तज
आओ तुम मेरी शरणागत
फिर मैं तेरे सब पापों से
मुक्त करूंगा तुझको भारत।

: : 67 : :

जिन में ना तप, इच्छा, भक्ति
या जो ढूंढ़ें मुझ में अवगुण
मेरी सब ये उत्तम बातें
उनसे ना करना तू वर्णन।

: : 68 : :

परम गहन गीता यह मेरी
जो भक्तों को समझाएगा
निश्चित है उत्तम वह मानुष
मेरी गोदी में आएगा।

: : 69 : :

इस कारज से बढ़कर कोई
मेरी ना सेवा करता है
औ' ऐसे मानव से प्यारा
कोई ना जग में लगता है।

: : 70 : :

पाठ पठन औ' चर्चा आदिक
नित्य करेगा जो यह[15] सज्जन
ज्ञान यजन द्वारा यह उसका
मेरा ही होवेगा पूजन।

:: 71 ::

श्रद्धापूर्वक अनसूया[16] बन
जो यह केवल श्रवण करेगा
निष्पापी उत्तम कर्मी वह
शुभ लोकों में रमण करेगा।

:: 72 ::

मेरे तात्विक वचनों पर क्या
ध्यान दिया है पूरा अर्जुन?
दूर हुए तेरे संशय क्या
(साफ हुआ है क्या तेरा मन ?)

:: 73 ::

अर्जुन बोले –

मोह मिटा संशय भागे हैं
ज्ञान हुआ तेरे ही कारण
अनुकम्पा कर जो समझाया
देव करूंगा आज्ञा पालन।

:: 74 ::

संजय बोले –

अर्जुन दामोदर दोनों का
अद्‌भुत रोमांचक संवादन
(मैंने ईश्वर अनुकम्पा से)
श्रवण किया है सारा राजन।

:: 75 ::

परम गहन यह योगेश्वर से
मैंने भारत! स्वयं सुना है
व्यास कृपा के कारण केवल
मेरा यूं सामर्थ्य बना है।

:: 76 ::

मंगलकारी अरु अद्‌भुत है
यह केशव अर्जुन संवादन

मेरा मन हर्षित हो जाता
फिर फिर करके इसका चिन्तन।

: : 77 : :

यह अद्भुत जगदीश्वर दर्शन
याद मुझे अब फिर फिर आता
मैं आश्चर्यचकित हो करके
हे राजन पुल्कित हो जाता।

: : 78 : :

जिस धरती पर धनवी अर्जुन
अरु रहते योगीश्वर यादव
देव! वहां पर श्री मिले अरु
मिलती नैतिकता, जय, वैभव।

।। इति अष्टादश अध्याय ।।

।। इति श्रीमद् भगवद् गीता ।।

❑❑❑
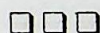
संदर्भ :

1. अपवर्जन : त्याग
2. उत्सर्जन : त्याग
3 शस्तिक : कल्याणकारक
4. चेष्टाएं : संकल्प विकल्प
5. परिज्ञाता : जानने वाला
6. त्रिपुटी : वेदान्त में ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता को त्रिक कहते हैं।
7 भाव : अवस्था
8. अहैतुक : बिना युक्ति वाला

9. अन–अवलेपित : अहंकार रहित
10. नैष्कृतिक : आजीविका का नाशक
11. वंचक : धूर्त
12. दर्पक : घमण्डी
13. आलोड़न : मंथन
14. सब धर्मों को त्याग : जो गुणों में दोष नहीं ढूंढ़ता
15. यह : गीता
16. अनुसूया : जो गुणों में दोष नहीं ढूंढ़ता